PANTHI DANCE: A CULTURAL MANIFESTATION OF UNTOUCHABLES

Dissertation submitted to the Jawaharlal Nehru University
in partial fulfillment of the requirement for
the award of the Degree of

MASTER OF PHILOSOPHY

AWADHESH KUMAR SINGH

SCHOOL OF ARTS AND AESTHETICS
JAWAHARLAL NEHRU UNIVERSITY
New Delhi - 110067
INDIA

2008

School of Arts & Aesthetics
JAWAHARLAL NEHRU UNIVERSITY
New Delhi- 110 067, India

Telephone : 26717576, 26704061
Telefax : 91-11-26717576

Dated: 29/07/2008

DECLARATION

I declare that the work done in this dissertation entitle "Panthi Dance: A Cultural Manifestation of Untouchables" by me is an Original work and has not been previously submitted for any other degree in this or any other University/Institution.

Awadhesh Kumar Singh
(Research Scholar)

Prof. H.S. Shivaprakash
(Supervisor)
Professor
School of Arts & Aesthetics
Jawaharlal Nehru University
New Delhi 110067

Prof. Parul Dave Mukharjee
(Dean)
Prof Parul Dave Mukherji
Dean
School of Arts & Aesthetics
Jawaharlal Nehru University
New Delhi - 110067

अनुक्रम

आभार		i
भूमिका		1–10
अध्याय–	**एक**	11–45
	दलित संस्कृति और सतनाम पंथ	
अध्याय–	**दो**	46–76
	पंथी नृत्य के विविध आयाम	
अध्याय–	**तीन**	77–104
	पंथी नृत्य के बदलते परिदृश्य	
उपसंहार		105–108
ग्रन्थानुक्रमणिका		109–111

आभार

इस शोध के चयन एवं मार्गदर्शन के लिए मैं प्रो. एच. एस. शिवप्रकाश का ऋणी हूँ। भारतीय समाज एवं संस्कृति के बारे में उनकी गंभीर सोच एवं हाशिये के समाज के विविध आयामों पर उनके दृष्टि कोण सदैव मेरे लिए प्रेरणा प्रद रहे हैं। उनके मित्रवत व्यवहार एवं समय–समय पर दिये मार्ग दर्शन ने मुझे दलित जातियों के सांस्कृतिक आयामों को समझने का मौका दिया, जिसके कारण मैं यह शोध पूरा कर सका।

मैं डा0 विष्णु प्रिया दत्त, डा0 उर्मिमाला एवं साथी शिक्षक सौम्यव्रत चौधरी का समय–समय पर मार्ग दर्शन एवं उत्साहवर्धन के लिए भी आभारी हूँ। साथ ही जगदीश जी एवं दीवान रामजी के आभारी हूँ जिन्होंने सदैव कार्यालय–संबंधी कार्यो में मेरी मदद् की।

विश्वविद्यालय के अपने मित्रों संजय, हरेश, सुनील, अभय, अमित एवं कारमेघम का आभारी हूँ जिन्होंने अपने अमूल्य समय का कुछ हिस्सा मेरी सहायता में लगाया। शायद इस मदद के बिना यह शोध–कार्य पूरा नहीं हो पाता।

छत्तीसगढ़ में शोध कार्य के दौरान विजय, महेश, बीरेन्द्र जी, चन्द्र प्रकाश, सुखराम जी श्री, के. आर. सोनी, पंथी कलाकारो एवं वहाँ के स्थानीय व्यक्तियों का सराहनीय योगदान रहा जिनके सहयोग से मैं सतनामी सामाजिक–सांस्कृति परंपराओं के मर्म को समझ सका। साथ ही बब्बा, बऊ, दादा, संजू, अंजू और आरती का स्नेह एवं प्रेम तथा निरंतर प्रेरणा मुझमें ऊर्जा एवं स्फूर्ति का संचार करती रही है।

ध्यान दें:–

टंकण की अशुद्धि के कारण "श" के स्थान पर "ष" मुद्रित हो गया है। कृपया इसे सुधार कर पढ़े। इस गलती के लिए मैं क्षमा प्रार्थी हूँ।

– अवधेश कुमार सिंह

भूमिका

किसी भी देष की संस्कृति इसकी सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक एवं दार्षनिक परंपराओं, विष्वासों, नैतिक मूल्यों एवं रीति–रिवाजों में अन्तर्निहित होती है। लोक कलाएँ इस संस्कृति का प्राथमिक एवं महत्वपूर्ण अंग है। इन लोक कलाओं को एक लंबे समय से चित्रकला, गायन, वादन, नृत्य आदि के माध्यम से अभिव्यक्त किया गया जाता रहा है। इन लोक कलाओं में लोक नृत्य मानव विकास के इतिहास के हजारों वर्षों के अनुभवों, विचारों, भावनाओं एवं संवेदनाओं का प्रतिफल है। मानव के क्रमिक विकास एवं उनके आचार–विचार को ये नृत्य सहज रूप से रेखांकित करते हैं। वस्तुतः ये लोकनृत्य समाज का दर्पण है क्योंकि जो भी समाज में परिवर्तन होता है उसकी झलक सहज रूप से इन लोक नृत्यों में देखी जा सकती है। इस प्रक्रिया में समाज और लोक नृत्य एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। ये नृत्य प्रायः महिला, पुरुष अथवा महिला एवं पुरुष दोनों की भूमिकाओं द्वारा एकल एवं सामूहिक रूप से प्रस्तुत किए जाते हैं। ऐसा प्रायः देखा गया है कि नियत समय और स्थान के अनुसार लोक नृत्य अपना स्वरूप एवं प्रकृति दोनों को ही (इन उपादानों के अनुसार) बदलते हैं। सामान्यतः लोक नृत्य विभिन्न सामाजिक उत्सवों एवं त्योहारों के अवसरों पर मनोरंजन के लिए प्रयोग में लाये जाते हैं। इसके साथ ही ये लोक नृत्य न केवल अपने आश्रित समाज को एक अलग विषिष्ट पहचान मुहैया कराते हैं बल्कि सामाजिक अन्याय एवं षोषण के खिलाफ एक मुखर हथियार के रूप में भी प्रयोग किये जाते हैं। ऐसा देखा जाता है कि षोषणकारी समाज में प्रस्तुतियाँ अत्यन्त उग्र एवं सामाजिक ढ़ाचे के विरोधी औजार के रूप में प्रकट होती है।

मानव सभ्यता की ऐतिहासिक विकास प्रक्रिया में प्रारंभिक सोपान को छोड़कर समाज को षोषक एवं षोषित वर्गों में विभक्त कर इस वर्गीकरण को स्वीकारोक्ति प्रदान कर दी गयी है। अनेक विद्वानों ने निरंतर अध्ययन और चिंतन के द्वारा उनकी

राजनैतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्थितियों का भी आँकलन किया। इससे यह निष्कर्ष निकाला गया है कि प्रारंभिक काल से ही देष–काल और समाज में व्याप्त भिन्नता से संस्कृतियों में भी विविधता आती गयी। जैसे–जैसे अध्ययन एवं षोध की निरंतरता बढ़ी, नये–नये तथ्य भी सामने आये। यह माना गया कि संस्कृतियों का यह अंतर उससे जुड़े समाज के श्रम, संघर्ष, उसकी उपयोगिता और परिस्थितियों के कारण संभव हुए। आगे चलकर इन विविध सांस्कृतिक रूपों को मोटे तौर पर दो भागों में बाँटा गया, जिसका आधार वर्गीय समाज था। अभिजन समाज की संस्कृति को 'आभिजात्य' और निम्न वर्गीय समाज की संस्कृति को "लोक संस्कृति" कहा गया। जाहिर था, इनके भीतर मौलिक भिन्नतायें थी। जहाँ एक ओर अभिजात संस्कृति ऐष्वर्य और प्रभुत्व को दर्षाती थी वहीं लोक संस्कृति निम्न वर्गीय समाज के सुख–दुख, राग–रंग, संघर्ष, संवेदनाओं एवं भावनाओं को एक अनवरत समय तक स्वतंत्र रूप में अभिव्यक्त किया।

भारतीय उपमहाद्वीप में वर्गीय संघर्ष की अपेक्षा जातीय संघर्ष की लंबी कड़ी रही है। वस्तुतः यहाँ के समाज का आधार वर्ग न होकर जाति रहा है। भारतीय समाज का मौलिक स्वरूप चतुर्वर्ण व्यवस्था पर केन्द्रित है जिसमें ऊपर के तीन वर्णों ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैष्य को सामाजिक राजनैतिक, एवं आर्थिक विषेषाधिकार प्राप्त है। इन्हीं विषेषाधिकारों का दुरूपयोग कर उन्होंने चतुर्वर्ण व्यवस्था के पायदान के अन्तर्गत आने वाली पिछड़ी एवं अस्पृष्य जातियों का दैहिक, मानसिक एवं वैचारिक षोषण एक लंबे काल खण्ड तक किया है। इस पूरी समाजिक व्यवस्था को एक ब्राह्मणवादी व्यवस्था के रूप चरितार्थ किया जा सकता है। इस ब्राह्मणवादी विचारधारा से उत्पन्न हुए विचारों ने अपने स्वार्थ के अनुसार मानवीय और भौतिक संसाधनों का प्रयोग अपनी जड़ों को मजबूत करने में किया। जिसके फलस्वरूप मनुवादी दृष्टिकोण से पारिभाषित सामाजिक, राजनैतिक एवं धार्मिक आख्यानों को ही सम्पूर्ण उपमहाद्वीपीय संस्कृति माना गया। इस

प्रकार की संस्कृति को हम एक उच्च जातीय संस्कृति कह सकते हैं। जिसने अपने सम सामयिक निम्न जातीय संस्कृतियों का अधिग्रहण और उन पर अपनी संस्कृति थोपने का प्रयास किया। इस ब्राह्मणवादी व्यवस्था एवं उससे जुड़े हुए जातिगत षोषणों के खिलाफ अखिल भारतीय स्तर पर विभिन्न काल खंडों में निम्न जातियों ने अपना विरोध दर्ज किया। उनके इस संघर्ष के फलस्वरूप विभिन्न संप्रदायों एवं पंथों का सूत्रपात हुआ। इन पंथों एवं संप्रदायों ने न केवल वैचारिक एवं दार्षनिक स्तर पर ब्राह्मणवादी व्यवस्था, कर्म–कांड, आडंबर एवं रीति–रिवाजों का खंडन किया, बल्कि अपनी षिक्षाओं को जन–जन तक फैलाने के लिये लोक तत्वों एवं लोक–कलाओं, जिनमें गीत एवं नृत्य प्रमुख है का सहारा लेकर एक समृद्ध निम्न जातीय संस्कृति का बीजारोपण किया। ये नवीन कलात्मक परंपरायें अपने आप में ब्राह्मणवादी कलात्मक परंपराओं के विपरीत स्वतंत्र पहचान, प्रकृति एवं जीवन के अलग सांस्कृतिक, धार्मिक एवं दार्षनिक पहलुओं को आत्मसात किये हुए थीं। इन नव सृजित लोक रूपों द्वारा षोषित समाज ने अपने समाजिक महत्त्वता एवं स्थान को सम सामयिक समाज में अभिव्यक्त किया। इन लोक कलाओं की प्रस्तुति की विषय–वस्तु एवं संदेष का लक्ष्य सामाजिक षोषण एवं भेदभाव पर कटाक्ष करना था। अखिल भारतीय स्तर पर षोषित एवं अस्पृष्य जातियों ने ऐसे ही विभिन्न लोक परंपराओं का सृजन किया है।

आज दलित संस्कृतियों के बारे में बहुत विष्लेषण चल रहा है। मूल निवासी होने के बावजूद निरक्षर दलित समाज की परंपरायें कृतियाँ, संस्कृतियाँ केवल मौखिक रूप में प्रचलित थी। लेकिन आज के दौर में दलितों के साक्षर होने के फलस्वरूप इस समुदाय एवं प्रगतिषील वर्ग के विद्वान इनका विष्लेषण कर रहे हैं। विषेषतया इन दलित विद्वानों ने विष्लेषण का आधार डा॰ अम्बेडकर की विचारधारा को माना है। डा॰ अम्बेडकर ने ब्राह्मणवाद के जाति आधारित षोषणकारी ढ़ाँचे पर कटाक्ष कर दलित एवं पिछड़ी

जातियों को मनुवादी समाज से मुक्त किया। डा॰ अम्बेडकर ने बौद्व धर्म के समतावादी एवं जाति विहीन सामाजिक ढ़ाँचे से प्रेरणा ले अंततोगत्वा दलित समाज को बौद्व धर्म में दीक्षित किया। आज के दलित विद्वान दलित समाज की परंपराओं का विष्लेषण डा॰ अम्बेडकर एवं बौद्व धर्म की दृष्टि से करते आ रहे हैं। यद्यपि स्वतंत्र भारत में डा॰ अम्बेडकर के संवैधानिक सुधारों से दलितों के पास कुछ उपलब्धियाँ हो गई है।

वर्तमान दौर में दलित परंपराओं, कृतियों एवं संस्कृतियों के पुनर्रावलोकन की आवष्यकता है। इन सभी परंपराओं का चरित्र एवं प्रकृति अस्पृष्यता पर आधारित है। इन परंपराओं की सार्वजनिक स्मृतियों में प्रादेषिक एंव ऐतिहासिक विभिन्नताएँ भी है। उदाहरण के लिये कर्नाटक में चमार जाति के लोग बकाल मुनि एवं मलैया माधेष्वर आदि संतों को अपना पूर्वज मानते हैं और इन संतों की पंरपरा इस क्षेत्र में आज भी जीवित है। इसके समानांतर उत्तर भारत में रैदास की पंरपरा है। रैदास इतने बड़े संत थे कि समूचे उत्तर भारत में उनके पंथ का प्रचार–प्रसार हुआ और एक राजपूतानी मीराबाई ने उनसे दीक्षा ले उन्हें अपना गुरु माना। इसी तरह छत्तीसगढ़ में गुरु घासीदास की परंपरा ने लोक मानस सामाजिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक आयामों एक अमिट छाप छोड़ी।

इन विभिन्न परंपराओं की विचार धाराओं की समानता भारत व्यापी निर्गुण भक्ति आंदोलन से है। जातिगत विभिन्नताओं के बावजूद इन जातियों के संतों ने सामूहिक रूप से इस निर्गुण परंपरा को प्रबुद्व बनाया। इस आंदोलन से जुड़े हुए अस्पृष्य जाति के संत आज भी अपने–अपने प्रदेषों के लोगों के आचार–विचार एवं सोच समझ में जीवित हैं। तात्विक स्वरूप निर्गुण भक्ति परंपरा मनुवादी हिंदूकरण का निराकरण है। यह परंपरा मध्य युग में हिंदुस्तान के निम्न जातीय समाज के संतों एवं चिंतकों की उपलब्धि है।

जिस मानवीय परिवर्तनों को इन आंदोलनों ने दलित एवं पिछड़ी जातियों के सामाजिक स्थिति में बदलाव किया आज की आधुनिक पूर्व अवधि में इसे दलितों की पंरपरा मानने की आवष्यकता है। ऐसा करने से हम डा० अम्बेडकर की विचार धारा की बुनियाद को और विषाल एवं गहरा बना सकते हैं। इस सच्चाई के साक्षात्कार करने के बाद अपने सामाजिक एवं दार्षनिक सक्रियता का अंदाजा लगाकर दलित समाज का आत्म–विष्वास बढ़ सकता है। क्योंकि दलितों का इतिहास षोषित होने का इतिहास था। केवल इतना ही नहीं था दलितों का इतिहास षोषण के विरूद्ध संघर्ष इतिहास भी था। डा० अम्बेडकर के पहले भी जिन व्यक्तियों ने संघर्षों से यह विरोधी लड़ाई लड़ी उनकी भी प्रासंगिकता उतनी ही उपयोगी है।

उपरोक्त संदर्भ तर्कों के प्रकाष विवेचना में प्रस्तुत अध्ययन छत्तीसगढ़ के दो जिलों रायपुर और सारंगढ़ में सतनामी समाज में प्रचलित पंथी नृत्य की सांस्कृतिक अभिव्यक्ति को समझने एवं विष्लेषित करने का प्रयास है। वस्तुतः पंथी नृत्य की संपूर्ण अभिव्यक्ति छत्तीसगढ़ के दलित निर्गुणी संत घासीदास के जीवन दर्षन, विचार, व्यवहार एवं सामाजिक आंडबरों, भेदभाव, कुरीतियों के खंडन को रेखांकित करती है। जिसने छत्तीसगढ़ में पंथी नृत्य में एक सांस्कृतिक पुर्नजागरण का सूत्रपात किया। पंथी नृत्य ने सतनाम पंथी एवं सतनामी समाज की मौखिक पंरपराओं का न केवल सृजन किया है बल्कि इसने अपने आश्रित समाज को नवीन सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक अभिव्यक्तियों वृहत्तर आयाम स्थापित किये है। छत्तीसगढ़ के दो वर्षों के प्रवास के दौरान मुझे सतनामियों की सांस्कृतिक परंपराओं से रू–ब–रू होने का अवसर मिला। पंथी नृत्य की प्रस्तुतियाँ न केवल लोक मानस के सुख–दुख, राग–रंगों, तीज त्यौहारों से जुड़ी हैं बल्कि सतनामी समाज के स्वतंत्र दर्षन, धर्म, रीति–रिवाज और समाज के प्रति इसके रवैये अथवा सोच को एक वृहत स्तर पर अभिव्यक्ति करती है। भक्ति, सर्मपण,

सामाजिक चेतना के साथ–साथ ये सामाजिक संघर्ष के पुट भी को अपने में आत्मसात किए हुए है। इनका महत्त्व इन प्रस्तुतियों के न केवल सामाजिक स्तर पर है बल्कि यह निम्न जातीय सांस्कृतिक एवं सौन्दर्यबोधक परंपराओं का प्रतिनिधित्व का करती है। विडंबना की बात यह है कि इन निम्न जातीय सांस्कृतिक पंरपराओं को अखिल भारतीय संस्कृति के रूप में महन्ता नहीं मिल पाई है। साथ ही इन कलाओं पर षोध करने के लिए अध्ययन सामग्री की भी अनुपलब्धता है जिसका स्पष्ट कारण यहाँ के बौद्विक वर्ग की इनके प्रति एक उपेक्षा भाव है। यद्यपि हिंदू संस्कृति एवं उससे जुड़े हुए विभिन्न आयामों पर एक अनवरत रूप से षोध होता आया है किन्तु इसके समानांतर अस्पृष्य एवं षोषित जातियों की परंपराओं के सांस्कृतिक एवं सामाजिक विष्लेषण एवं षोध की कमी है। मुख्यतः अकादमिक वर्गों में इस विमर्ष को लेकर एक राजनीति हो रही है। यह राजनीति सामाजिक उच्चता के विचार से प्रभावित है जिसमें उच्च वर्गीय संस्कृति एवं रीति–रिवाजों के विष्लेषण पर अधिक बल दिया जाता है। उहारण स्वरूप षरीफ मोहम्मद ने "मध्य प्रदेष का सांस्कृतिक इतिहास" में पंथी नृत्य के कलात्मक वर्णन का रेखांकन किया किंतु उन्होंने इसके सामाजिक एवं सांस्कृतिक पहलूओं की उपेक्षा की है। एक अन्य लेखक एच॰ एल॰ षुक्ला ने पंथी नृत्य को वैदिक एवं ब्राह्मणवादी दृष्टिकोण से परिभाषित किया है। उनके अनुसार पंथी नृत्य की संरचना और सौंदर्यबोध हिन्दू सांस्कृतिक परंपराओं से साम्यता रखती है और वस्तुतः यह एक स्वतंत्र परंपरा न होकर हिन्दू संस्कृति का ही एक अंग है। यद्यपि सौरभ दूबे ने 18वीं से 20वीं सदी के सतनामी समाज की परंपराओं का राजनैतिक एवं आर्थिक परिप्रेक्ष्य में विष्लेषण किया है। किन्तु सांस्कृतिक परंपराओं पर उनके विष्लेषण में कमी है।

वस्तुतः भारत में फैले अस्पृष्य एवं अछूत समुदाय की परंपरायें लगभग समान है किन्तु उच्च वर्गीय संस्कृति की तरह इसमें सैद्धान्तिक रूप से एकात्मकता की कमी है।

हेल्डी रेवन्ना के अनुसार इसके पीछे प्रमुख कारण दलित समाज की निरक्षरता एवं बंधुआ मजदूर एवं छोटे काष्तकार होने के कारण इनका सामजस्य अन्य निम्न जातीय समाज से नहीं हो पाया। जिसके फलस्वरूप इनकी परंपरायें एक वृहत रूप में न रह कर क्षेत्रीय एवं भाषायी स्तर पर सिमटकर रह गई है। वस्तुतः भारत में विभिन्न सांस्कृतिक अभिव्यक्तियाँ है। आज के दौर में इन अभिव्यक्तियों के अध्ययन एवं षोध की आवष्यकता है। महज सैद्धांतिक पक्षों पर बहस करने के बजाय अध्ययन वस्तु के बुनियाद की बढ़ाने की आवष्यकता है। नये–नये तथ्यों की खोज होने पर सैद्धांतिक पक्षों के बदलाव की आवष्यकता पड़ेगी। अंततः एक निरपेक्ष दृष्टिकोण से इन कलाओं के पुर्नरावलोकन की आवष्यकता है।

चूँकि यह षोध कार्य क्षेत्र आधारित अध्ययन है इसलिए इसमें प्राथमिक एवं द्वितीयक श्रोतों का प्रयोग किया गया है। प्राथमिक श्रोत के लिए साक्षात्कार प्रक्रिया तथा स्व अवलोकन विधि का प्रयोग किया गया है। साक्षात्कार प्रक्रिया की सहायता से छत्तीसगढ़ के दो जिलें रायपुर और सारंगगढ़ के सतनामी धर्म गुरु, सामाजिक–राजनैतिक नेताओं, पंथी कलाकारों तथा सामान्य सतनामी अनुयायियों के साथ गहराई से साक्षात्कार करके प्राथमिक श्रोत प्राप्त किये गये हैं। सतनामी समाज के अलग सामाजिक, धार्मिक का जानने के लिए क्षेत्र भ्रमण के दौरान मैंने इन दोनों ज़िलों के पंथी नृत्य कलाकारों की विभिन्न प्रस्तुतियों को देखकर उनके कई सांस्कृतिक संकेतों, रीति–रिवाजों एवं सामाजिक मूल्यों का अवलोकन करते हुए समय–समय पर संभव भागीदारी भी की। अध्ययन से संबंधित द्वितीयक श्रोत के लिए विभिन्न पुस्तकों, लेखों, समाचार पत्रों, रिर्पोटों, पम्पलेटों इत्यादि की सहायता से पंथी नृत्य, सतनामी समाज, पंथी गीत पहचान एवं उनकी संस्कृति के विषय में सैद्धांतिक एवं अवधाराणात्मक पक्षों से संबंधित जानकारी प्राप्त की।

अभी तक ऐसा देखा जाता है कि छत्तीसगढ़ के पंथी नृत्य के सामाजिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक पक्षों के संदर्भ में एकादमिक षोध कार्यों का अभाव है। यह षोध कार्य इस कड़ी में छत्तीसगढ़ के पंथी नृत्य के सामाजिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक अभिव्यक्तियों को समझने का एक प्रयास है।

इस प्रस्तुत अध्ययन का मुख्य उद्देष्य निम्न मौलिक प्रष्नों के उत्तर खोजने के इर्द–गिर्द घूमता है।

1. भक्ति आंदोलन के तर्ज पर सतनामी आंदोलन ने वर्णाश्रम व्यवस्था का विरोध करते हुए अपनी अलग पहचान कैसे बनायी

2. छत्तीसगढ़ में पंथी नृत्य ब्राह्मणवादी सामाजिक व्यवस्था के विरोधी औजार के रूप में कार्य करते हुए अपनी एक सतनामी नई पहचान कैसे बनाई

3. छत्तीसगढ़ में सतनामी समाज अपनी व्यक्तिगत पहचान बनाने तक सीमित है या यह बड़े सामाजिक सरोकारों से संबंधित है।

4. वर्तमान समय में बदलते राजनैतिक परिवेष, दलित आंदोलन एवं वैष्वीकरण ने किस प्रकार से सतनामी मौखिक परंपराओं, संकेतों, मिथकों एवं पंथी नृत्य की संरचना विषय–वस्तु एवं सौंदर्यबोध पर प्रभाव डाला है।

इस षोध के प्रथम अध्याय में अखिल भारतीय सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक व्यवस्था में व्यापक वर्चस्व एवं षोषण के संदर्भ में नृत्य, लोक संस्कृति एवं लोक कलाओं की प्रतिरोधी भूमिका इनके उद्भव और विकास का वर्णन किया गया है। इसी संदर्भ में छत्तीसगढ़ में सतनाम पंथ और उसके दार्षनिक एवं सांस्कृतिक परंपराओं के उद्भव, विकास और इसकी व्यापकता का सविस्तार चित्रण किया गया है।

सुविधानुसार इस अध्याय में भारतीय समाज इसकी विभिन्न लोक कलाएँ नृत्य एवं तथा सतनाम दर्षन का विष्लेषण तीन प्रमुख भागों में किया गया है। प्रथम भाग में भारतीय समाज में उसमें उत्पन्न होने वाले विभिन्न लोक कलाओं, नृत्य एवं संस्कृति पर प्रकाष डाला गया है। दूसरे भाग में भारत में भक्ति आंदोलन और षोषित, अस्पृष्य तथा निम्न जातीय प्रतिरोधी परंपरा के सामांनातर उद्भव एवं विकास को रेखांकित किया गया है। अध्याय के अंतिम भाग में छत्तीसगढ़ में सतनामी लोक संस्कृति एवं परंपरा का, गुरु घासीदास के जीवन संदर्भ एवं मार्ग दर्षन में निर्माण एवं विस्तार की चर्चा की गई है।

द्वितीय अध्याय में पंथी नृत्य के विभिन्न सामाजिक, दार्षनिक एवं कलात्मक पहलुओं को रेखांकित किया गया है। प्रथम भाग में सतनाम पंथ में पंथी नृत्य की प्रासंगिकता एवं इसके ऐतिहासिक विकास के विभिन्न घटनाओं का वर्णन किया गया है। दूसरे भाग में अखिल भारतीय भक्ति आंदोलन में विकसित निम्न जातीय समाज में पल्लवित लोक कलाओं के संदर्भ में पंथी नृत्य की वस्तुनिष्ठ स्थिति, सौन्दर्य बोध एवं कलात्मक पहलुओं का तुलनात्मक विष्लेषण किया गया है। तृतीय भाग में सतनाम पंथ से एवं पंथी नृत्य से जुड़े हुए प्रतीक, रीति–रिवाज एवं सतनामी समाज को पंथी नृत्य में प्रयुक्त विषय--वस्तु तथा विभिन्न सामाजिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक पक्षों पर प्रकाष डाला गया है। अध्याय के अंतिम भाग में पंथी नृत्य के कलात्मक पहलू यथा स्थान, कलाकार, दर्षक, वाद्य यंत्र, वेषभूषा, नृत्य षैली इत्यादि का चित्रण किया गया है।

तृतीय अध्याय वर्तमान में राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक परिदृष्यों के बदलाव एवं भूमंडलीयकरण के प्रभाव स्वरूप पंथी नृत्य में आये हुए परिवर्तनों का वर्णन किया गया है। अध्याय के प्रथम भाग में पंथी नृत्य के उद्गम से लेकर वर्तमान

काल की तक यात्रा में इसके कलात्मक एवं संरचनात्मक एवं सौन्दर्यबोधक पक्षों में हुए परिवर्तनों की चर्चा की गई है। दूसरे भाग में समसामायिक राजनैतिक परिदृष्यों एवं राज्य द्वारा किसी वर्ग विषेष की तुष्टिकरण नीति के संदर्भ में पंथी नृत्य द्वारा अपने स्वार्थों एवं नीति के प्रचार–प्रसार करने के विविध आयामों का परीक्षण किया गया है। तृतीय भाग में भूमंडलीकरण एवं उसके अनुषंगी वाणिज्यीकरण के पंथी नृत्य पर पड़ने वाले प्रभावों एवं उसके फलस्वरूप बदलती हुई सतनामी मौखिक परंपरा पर प्रकाष ड़ाला गया है।

अध्याय – 1

दलित लोक संस्कृति एवं और सतनाम पंथ

किसी भी संस्कृति के प्राथमिक में स्त्रोत इसकी जीवित परंपराओं एवं इसकी सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, दार्षनिक विष्वासों, मूल्यों एवं रीति–रिवाजों की अहम भूमिका होती है। लोक कलाएँ इस संस्कृति का एक अभिन्न अंग माना जाती है। लोक कलाओं ने स्वयं को चित्रकारी, गायन, स्थापत्य, कढ़ाई इत्यादि में अभिव्यक्त किया है। इन समस्त लोक कलाओं में लोक नृत्य का एक विषिष्ट स्थान है। नृत्य सदैव मानव जीवन की सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक अभिव्यक्तियों का माध्यम रहा है। मानव ने अपने विकास की यात्रा में अपने सुख–दुख के विभिन्न भावों को नृत्य द्वारा प्रस्तुत किया है। वस्तुतः मनुष्य ने बोलने एवं चित्रकारी करने के पहले ही नृत्य करना प्रारंभ कर दिया था, जिसका प्रमाण विभिन्न देषों की प्राचीन परंपराओं में सहज ही देखने को मिलता है।[1]

लोक नृत्यों ने विभिन्न बाहरी अध्यारोपणों को नकारते हुए स्वतंत्र एवं परिपक्व षैली का निर्माण किया है, जिसमें दर्षक एवं नर्तक एक दूसरे के सम्पूरक हैं। इन लोक नृत्यों में अपने समाज की दिन–प्रतिदिन की क्रियाएँ, धार्मिक रीति–रिवाज सहजता पूर्वक उभर कर आते हैं। इन सब के साथ–साथ जीवन के संघर्षों की छाप भी इन लोक नृत्यों में देखने का मिलती है चाहे वह प्रकृति के विरूद्ध संघर्ष को अभिव्यक्त करते है अथवा समकालीन मानवीय व्यवस्था के। इन दोनों ही दषाओं में नृत्य एक मुखर अभिव्यक्ति के रूप में उभर कर आया है। प्रायः ऐसी अवस्थाओं में नृत्य का प्रयोग एक प्रतिरोधात्मक बल के रूप में किया गया है। जिसके कारण आश्रित समाज को एक सषक्त सांस्कृतिक एवं सामाजिक पहचान तथा अपनी सामानांतर सामाजिक व्यवस्था में एक विषिष्ट स्थान मिल सके।

भारतीय उपमहाद्वीप में सांस्कृतिक एवं धार्मिक विलक्षणता यहाँ का एक विषिष्ट गुण है। "भारत में लोक कलाओं, मुख्य रूप से नृत्य के प्रमाण पूरा पाषाणिक एवं मध्य पाषाणिक काल में देखने को मिलते हैं। मध्य प्रदेष के "भीमबेटका" के षैल चित्र समकालीन मानव के विभिन्न राग–रंगों के उत्साह को निर्दिष्ट करते हैं।"[1] इन षैल चित्रों की विषय वस्तु में षिकार, भोजन एवं सामाजिक क्रिया कलापों के चित्र प्रमुख हैं। ये चित्र मानव जीवन के संघर्षों को इंगित करते हैं। यद्यपि प्राकृतिक षक्तियों सें संघर्ष या मानव निर्मित ढ़ाँचे में दार्षनिक, धार्मिक, आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक रूप से संघर्ष किया है।

भारत कभी एक धर्म एवं एक संस्कृति का देष नहीं रहा है। यह सदैव विभिन्न पंथों, धर्मो, दर्षनों, रीति–रिवाज एवं संस्कृतियों का मिश्रण रहा है। जिन्होंने सदैव एक–दूसरे को प्रभावित किया है। इतिहास की लंबी यात्रा में इन विभिन्न संस्कृतियों में संघर्षों एवं सहयोग की एक लंबी कड़ी देखी जा सकती है। प्रमुख रूप से भारतीय संस्कृति को दो भागों में बाँटकर उसका विवेचन किया जा सकता है। जिनका आधार वर्णाश्रम व्यवस्था है। एक मुख्य धारा की संस्कृति, जिसमें भारतीय समाज की हिंदू धर्म एवं उसकी सहयोगी संस्कृतियाँ प्रमुख हैं। इसमें एक प्रबुद्ध समाज को विषेषाधिकार एवं सभी सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक अधिकार प्राप्त है, प्रायः उच्च वर्ण कहलाता है, इसमें ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैष्य समाज की गणना की जाती है। इसके सामानांतर चतुर्थ एवं पंचम वर्ण का समाज है जिन्हे षूद्र एवं अछूत (अस्पृष्य) कहा जाता है। भारतीय इतिहास में विषिष्ट धार्मिक, दार्षनिक एवं सांस्कृतिक पहचान रही है।

इस निम्न जातीय समाज ने समय–समय पर अपने सामानांतर चले आ रहे षोषणकारी ढ़ाँचे के विरूद्ध विद्रोह एक संघर्ष किया है जिसके फलस्वरूप विभिन्न

[1] शरीफ मोहम्मद, मध्य प्रदेष का सांस्कृतिक इतिहास पृष्ठ–5

सांस्कृतिक एवं धार्मिक सोपानों का निर्माण हुआ और जिसमें इस समाज की श्रुति एवं स्मृति परंपराएँ मुखरित होती रही हैं। इसमें दार्षनिक स्तर के साथ–साथ विभिन्न सांस्कृतिक एवं रीति–रिवाजों का निर्माण किया गया। इन स्वतंत्र एवं अलग परंपराओं ने दलित समाज को स्वतंत्र अभिव्यक्तियाँ प्रदान की। जिससे वे लंबे समय तक अपने सामानांतर चले आ रहे सामाजिक ढ़ाँचे का प्रतिषोध करते रहे हैं।

लोक मानस ने अपने भौगोलिक, भाषायी एवं सांस्कृतिक परिदृष्य के अनुसार इन लोक–कलाओं का निर्माण किया है। यद्यपि भारत जैसे देष में हर स्तर पर विविधता है जिसका प्रभाव यहाँ के लोक–जीवन एवं उनसे जुड़ी हुई परंपराओं में दिखाई देता है। यद्यपि इस विविधता में लोक व्यवहार और उनको अभिव्यक्त करने की विधि एक ही है। इसलिए भाषायी एवं नृ जातीय विभिन्नताओं के बावजूद भी लोक नृत्यों का स्वरूप प्रायः एक जैसा ही प्रतीत होता है।

ऐसा प्रायः देखा जाता है कि षोषणकारी समाज में नृत्य एक प्रतिरोध के औजार के रूप में प्रयोग किया जाता है। यह नृत्य न केवल समाज में व्यापक षोषण, अन्याय एवं सामाजिक भेदभाव का विरोध करते है बल्कि साथ ही अपने आश्रित समाज को एक स्वतंत्र पहचान दिलवाकर एक सार्वभौमिक बंधुत्व, एकता, समता, आडंबर–विहीन एवं मानव मूल्यों पर आधारित समाज की स्थापना की पुरज़ोर वक़ालत करते हैं। ऐसी प्रस्तुतियों में नृत्य प्रायः उग्र विरोध के औजार के रूप में प्रयुक्त होते हैं।

भारतीय समाज में सामाज़िक षोषण यहाँ पर स्थापित ब्राह्मणवादी ढ़ाँचे पर आधारित हैं जिसे प्राचीन काल से लेकर अब तक की यात्रा को भारतीय इतिहास के विभिन्न काल खण्डों में देखा जा सकता है। भारतीय इतिहास में यहाँ के लोक मानस को दो प्रमुख वर्गों में बाँटा जा सकता है। एक उच्च वर्णीय तथा एक निम्न वर्णीय अर्थात्

अछूत अथवा अस्पृष्य। सामाजिक एवं धार्मिक विभिन्नताओं का प्रभाव इन दोनों वर्गों के सांस्कृतिक तत्वों पर दिखाई देता है।

नृत्य की बात करें तो भरत मुनि ने नृत्य को दो प्रमुख भागों में बाँटा है। इन दोनों प्रकार के नृत्यों में संरचनात्मक एवं सौन्दर्यपरक तत्व वर्ग संरचना पर आधारित है। "भरत मुनि के अनुसार नृत्य और नृत्त, नृत्य षैलियों के दो प्रमुख अवयव है।"[2] जो मार्गीय एवं लोक नृत्य षैलियों का प्रतिनिधित्व करते हैं। नृत्त में षरीर के भाव, ताल, लय एवं उसमें प्रयुक्त विषय वस्तु में समानता होती है। ऐसी प्रस्तुतियों में षरीर के भावों पर अत्यधिक बल देकर उन्हें परिष्कृत किया जाता है। प्रमुखतः यह भाव प्रधान षैली है। इस परिषकरण की प्रक्रिया में विभिन्न हस्तमुद्राओं, ग्रीवा मुद्रा, चक्षु मुद्राओं एवं पैर की मुद्राओं का निर्माण किया गया है। जिससे षरीर एवं टेक्स्ट के भावों को अभिव्यक्ति किया जा सके। आधुनिक भरत नाट्यम्, कुचिपुड़ी, ओडिसी आदि नृत्यों का सृजन इसी षैली से हुआ है। इन सभी नृत्यों का संबंध समाज के धार्मिक रीति–रिवाजों मुख्यतः मंदिरों, पुरोहितों एवं कर्मकांडीय पूजा–विधानों से रहा है। यद्यपि इसमें भाग लेने वाले कलाकारों का संबंध समाज के निचले वर्ग से रहा, किंतु आज के बदलते हुए परिवेष में यह नृत्य मंदिरों से निकल वाणिज्यिक रूप में एक विषिष्ट समुदाय द्वारा एकाधिकृत कर लिया गया। इसके साथ ही यह नृत्य एक सामूहिक उपादेयता को छोड़कर व्यक्तिगत एवं एक विषिष्ट वर्ग की विरासत बन गये है।

दूसरे प्रकार के वर्ग में नृत्त प्रकार की षैली है। प्रायः नितृ प्रकार के नृत्य में षरीर के भाव प्रस्तुति में प्रयुक्त Text से मेल नहीं खाते हैं। ऐसे नृत्यों में षरीर के भाव स्वछंद एवं किसी भी बाहरी दबाव से मुक्त होते हैं। ऐसे नृत्यों में किसी पूर्वाभ्यास एवं नृत्य की

[2] नाट्य शास्त्र (1:42) नृत्या/ताड्गहार संपन्ना रसभावक्रियात्मिका ।।(नृत्त में केवल अंगहार रहते हैं जबकि नृत्य में होता है अपेक्षित भाव भी)।।

व्याकरण की आवष्यकता नहीं होती है। प्रकृति की विभिन्न अवयवों एवं अपने दैनिक जीवन के विभिन्न भाव इन नृत्यों में षामिल होते हैं। "नृत्त" प्रधान नृत्य शैली में परिष्कृत भावों की अपेक्षा प्रकृतिपरक भावों को अधिक महत्ता दी जाती है। ऐसे नृत्यों का संबंध मुख्य रूप से दलित एवं आदिम जनजातियों से रहा है। इस वर्ग ने अपने सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, आध्यात्मिक जीवन को उत्साह रूप में मनाने के लिए इस विधा को अपनाया है। "कृषि आधारित, वन आधारित एवं पषुचारण आधारित समाज में ऐसे नृत्यों की अधिकता रही है। उत्तर भारत में ऐसे नृत्यों को कहरवा नाच कहते हैं। कहरवा नाम बड़ा व्यापक है। इमसें अहीरों, कहारों, धोबियों एवं अन्य दलित जातियों के नाम आते हैं। इसमें परस्पर थोड़ा बहुत भेद होता है परंतु रूप प्रायः समान होता है। कहरवा बड़ा लोकप्रिय नृत्य है। जीवन उसमें उछला पड़ता है। इन लोकनृत्यों का छंद अप्रतिबद्ध होता है, उसमें मार्ग के प्रतिबंध नहीं रहते जिससे गति का प्रभाव स्वछंद होता है। यह भाव प्रधान नहीं, गति प्रधान है।[3]"

इन सभी नृत्यों की संरचना एवं सौन्दर्यबोध इनकी आश्रित जातियों एवं उनके क्रियाकलापों पर आलंबित होते हैं। उदाहरण स्वरूप दीवारी नृत्य बुंदेलखण्ड के पषुचारक समुदाय अर्थात् अहीरों का नृत्य है। इसमें अहीर जाति के जीवन से जुड़े हुए विभिन्न परिदृष्यों को देखा जा सकता है। पषुचारक वृत्ति में लाठी एवं डंडे की महत्त्वता एवं उनके दैनिक क्रियाकलापों की छाप दीवारी नृत्य में उभरकर आना युक्ति संगत सा प्रतीत होता है। ठीक उसी प्रकार ढ़ीमर नाच (मल्लाहों का नृत्य), धोबिया नाच, कहार नृत्य एवं राउत नाचा अपने–अपने सामाजिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमियों को एक सामूहिक रूप से अपने सामाजिक एवं सांस्कृतिक अवसरों पर प्रकट करते हैं।

---

[3] भगवंत शरण उपाध्याय, भारतीय कला की भूमिका पृष्ठ–92

इन सभी प्रस्तुतियों में प्रायः एक ही समानता देखी जा सकती है कि ये सभी नृत्य स्वयं को स्वतंत्र पहचान देने के साथ–साथ अपने समाज की सांस्कृतिक परंपराओं का प्रतिनिधित्व करते हैं तथा निरंतर अपने समाज के सुख–दुख, राग–रंग एवं मानवीय मूल्यों को अभिव्यक्त करते रहते हैं।

भक्ति आंदोलन : दलित लोक संस्कृति

इतिहास के लंबे कालखण्डों में षोषित एवं सामाजिक अधिकारों से विपन्न जातियों ने समय–समय पर अपनी समकालीन व्यवस्था के विरूद्ध विद्रोह किया है, जिसे समय–समय पर बुद्व, महावीर एवं चार्वाक जैसी विभूतियों ने प्रतिनिधित्व दिया है इसकी छाप इस षोषित वर्ग के चिंतन विचारों तथा उससे जुड़ी हुई सामाजिक परिस्थितियों में में देखने को मिलती है।

"ग्यारहवीं सदी में फैले अखिल भारतीय भक्ति आंदोलन ने मानव समता, एकता, बंधुत्व एवं मानवीय मूल्यों पर आधारित सामाजिक व्यवस्था का प्रचार–प्रसार किया। इस भक्ति आंदोलन ने अपने समकालीन समाज में व्याप्त कुरीतियों, आंडबरों, कर्मकांडों एवं सामाजिक षोषण का विरोध किया तथा उसके स्थान पर सत्य, अहिंसा, प्रेम, भातृत्व एवं कर्मो की षुद्धता पर विषेष बल दिया।" इस नवनिर्मित सिद्धांत अथवा सामाजिक एवं वैचारिक क्रांति ने अखिल भारतीय स्तर पर षोषित समाज के मानसिक पटल पर एक विलक्षण प्रभाव डाला, जिसके फलस्वरूप उन्हें समकालीन समाज के खंडन के लिये आधात्मिक एवं दार्षनिक षक्ति प्रदान की।

भक्ति आंदोलन का अखिल भारतीय स्तर पर प्रचार–प्रसार विभिन्न कालखंडों में हुआ। लेकिन अपनी इस यात्रा में भक्ति आंदोलन ने दलितों एवं षोषित समाज की मनोवैज्ञानिक परिस्थितियों को एक समान प्रभावित किया है। भक्ति आंदोलन की इस

यात्रा को श्रीमद् भगवत् पुराण रेखांकित करता है–

उत्पनः द्रविणे साद्हम
वृद्विम कर्नाटक गत गताः
क्वचित–क्वचित महाराष्ट्रे
गुजर्रे जीर्णताम गताः
वृदावन पुनः प्राप्य
नवीने व स्वरूपणि
जातहम् युवती सम्यक
पृष्ठे रूप च साम्प्रतम।।[4]

(द्रवड़ि देष में मैं उत्पन्न हुई हूँ, कर्नाटक में मैं बड़ी हुई। महाराष्ट्र में मैं कहीं–कहीं हूँ एवं गुजरात में जीर्ण हो गयी हूँ। वृदावन को प्राप्त करके मैं नई के समान सुन्दर रूप वाली युवती हो गयी हूँ।)

भक्ति आंदोलन के प्रभाव स्वरूप अखिल भारतीय स्तर पर भौगोलिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों के अनुसार विभिन्न पंथों एवं संप्रदायों का सूत्रपात हुआ। कर्नाटक का लिंगायत संप्रदाय, महाराष्ट्र का वारकरी संप्रदाय, उत्तर भारत का कबीर पंथ, रैदास पंथ एवं छत्तीसगढ़ का सतनाम पंथ प्रमुख संप्रदायों में है, जिन्होंने सामाजिक उच्चता, जाति–पाँति, बाहरी आडंबरों, अंधविष्वासों एवं षोषण का विरोध किया। साथ ही अछूतों एवं अस्पृष्यों की अस्मिता एवं परिश्रम के पवित्र महत्व पर प्रकाष डाला।

वस्तुतः भक्ति आंदोलन ने अस्पृष्यों एवं अछूतों को प्रथम बार एक दार्षनिक एवं वैचारिक आधार प्रदान किया। इतिहास के लंबे काल तक विपन्नता एवं सामाजिक

[4] पद्म पुराणे उत्तरखण्डे श्री मद्भागवत माहात्म्यें (1.47–49) (सं.–जगदीश लाल शास्त्री)

षोषण झेल रहे अस्पृष्य समुदाय को भक्ति आंदोलन ने सामाजिक षोषण के प्रति विद्रोह को दर्ज कर मानवीय मूल्यों पर आधारित समाज की स्थापना पर बल दिया। भारतीय उपमहाद्वीप में 11वीं सदी के प्रथम अपृष्य भक्ति संत चन्नय्य, जिनका चमार जाति में जन्म हुआ था, उन्होंने प्रथम बार सामाजिक षोषण के खिलाफ सीधे तौर पर विद्रोह किया। संत चन्नय्य ने अपने सामानांतर चले आ रहे ब्राह्मणवादी आडंबरों, कर्मकांडो एवं छूआ–छूत पर कटाक्ष कर अस्पृष्य समाज को मन्दिर में स्थापित देवता की उपासना की अपेक्षा स्वानुभव से प्राप्त निराकार एवं निर्गुण ईष्वर की उपासना का प्रचार–प्रसार किया। चन्नया ने ईष्वर की प्राप्ति के विमर्ष पर जाति एवं संप्रदाय से उठकर प्रत्येक व्यक्ति को ईष्वर प्राप्ति का अधिकार दिया है।

षुक्राणु, रक्त, मज्जा, मांस
भूख, प्यास, दुख, लोलुपता
ये सभी एक और एक समान है
अन्तर है केवल लोगों की अजीविकाओं में
व्यक्ति की जाति कुछ भी हो
केवल साक्षात्कार के द्वारा
वह हो जायेगा परमसत्ता में समाविष्ट
पहचान लिया है मैंने इस रहस्य को
कभी नहीं भूला उस पहचान के पष्चात
मत बनो गुलाम निहाई, रांपी और कील के
समझो निजात्म राम–राम को।।[5]

[5]H.S, Shiv Prakash, 1997, Mataphor and Paradox: Two model of expression in Vachana in English Translation, Pg.-176

अपने समकालीन रूढ़िवादी दृष्टिकोणों के खिलाफ चन्नय्य ने एक वैचारिक परंपरा को सृजन किया जो तर्क की कसौटी पर खरी उतरती थी।

जब बत्ती और तेल मिलकर
आग की लौ में प्रजवल्लित होते है
यह प्रकाष किसका है?
बत्ती का या तेल का
अथवा अग्नि तत्व का
चमकता हुआ प्रकाष
जब तीनों वस्तुए मिलती है
ज्योति वायु के द्वारा प्रज्जलवित होती
जब उसे कोई कर्म ज्ञान से देखता
उसके लिए यह बगैर नाम के रूप है
हम देखते है कैसे?
किस भाव से?

जब मुक्त हो जाओगे, एक वस्तु के दूसरी वस्तु से देखने की संदेहास्पद प्रवृति से
मत बनो गुलाम निहाई, रांपी और कील के
समझो निजात्म राम–राम को।[6]

चन्नय्य के निर्गुण विचारों का प्रभाव वसवण्णा के दर्षन पर पड़ा। चन्नय्य के इस मुहिम को उन्होंने आगे बढ़ाते हुए ब्राह्मणवादी धर्म के संरचना, आडंबर, जाति–पांति को चुनौती दी। वसवंणा ने अपने विचारों को चन्नय्य का ऋणी मानते हुए उन्हें अपना पिता माना।[1] वसवेष्वर का परमात्मा कर्म, जाति और अस्पृष्यता का कठोर विरोधी है उसका परमेष्वर अस्पृष्य जाति के घर में भोजन करता है। इसलिए वेद षास्त्र हिलने लगते है–

[6] वही पृष्ठ–176

"वेद हिलने लगा, षास्त्र डुलने लगा
तर्क चिंतन नहीं कर सकने से झुकने लगे,
आगम दूर हठ कर खड़ा हुआ।
हमारे कुडल संगमय्या के अस्पृष्य जाति के घर में भोजन करने के
कारण।"[7]

वसवेष्वर जाति व्यवस्था के कठोर विरोधी थी। उनके अनुसार जन्म से कोई अछूत न होकर अपने कर्मों से हेय होता है। सभी जीवों के प्रति सहानुभूति रखने वाला व्यक्ति ही उनके ईष्वर कुडल संगमदेव का प्रिय है–

"हत्या करने वाला अछूत है
कुल क्या है? कुल का क्या प्रयोजन है?
सभी जीवों का हित चाहने वाले
अपने कूडलसंगमदेव के षरण ही
श्रेष्ठ है, कुली है।"[8]

वसवेष्वर के क्रान्तिकारी विचारों की अनुगूंज पन्द्रवी सदी में उत्तर भारत में भक्ति आंदोलन के प्रवेष के रूप में सुनाई देती है। उत्तर भारत में भक्ति आंदोलन ने निर्गुण परंपरा का रूप ले लिया। सगुण परंपरा को उत्तर भारत में फैलाने का श्रेय रामानंद को जाता है। रामानंद के तद्पष्चात तुलसीदास, सूरदास, मीराबाई आदि भक्ति संतों ने सगुण पंरपरा को आगे बढ़ाया। वस्तुतः उत्तर भारत की सगुण भक्ति धारा ने प्राचीन हिंदू धर्म की समकालीन विषमताओं एवं इसमें व्याप्त आंडबरों को मिटाकर इस पुर्नरूद्वार कर इसे पुर्नस्थापित किया। सगुण भक्ति धारा ने जातिगत संघर्ष की अपेक्षा ईष्वरीय समर्पण

[7] काशीनाथ अंबलगे, बसवेश्वर काव्यशक्ति और सामाजिक शक्ति पृष्ठ–64
[8] वही पृष्ठ–65

पर अधिक बल दिया। इसके अनुसार ईष्वर की सत्ता सर्वोपरि है। वही इस संसार में व्याप्त भौतिक एवं अभौतिक वस्तुओं का निर्माता है। जातिगत विषमताओं एवं सामाजिक स्थिति को पुर्नजन्म के कर्मों के फल पर आधारित बताकर सामाजिक व्यवस्था को आदर्ष माना गया।

उत्तर भारत की निर्गुण परंपरा ने सगुण भक्ति धारा की अपेक्षा दलितों एवं षोषितों को अपनी ओर अधिक आकर्षित किया और उन्हें एक सषक्त धार्मिक, दार्षनिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक अभिव्यक्ति प्रदान की। निर्गुण मत के सतों ने सगुण ईष्वर की अपेक्षा एक अंनत एवं रूपहीन, निराकार ईष्वर की संकल्पना की। इस मत का ईष्वर सर्वव्याप्त है वह हर किसी के हृदय में वास करता है। उसे प्राप्त करने के लिये देवालय जाने की आवष्यकता नहीं है बल्कि हृदय की षुद्धता एवं मानवीय मूल्यों यथा दया, करूणा, कर्मों में षुद्धता एवं सत्य के आचरण से उसे सहज रूप से पाया जा सकता है। कबीर के पद "मोको कहाँ ढूढ़े बंदे मैं तो तेरे पास में, न मैं मंदिर न मैं मस्जिद न काबे कैलाष में।[9]" में मंदिर, मस्जिद, काबा और कैलाष में ईष्वर के वास पर कटाक्ष किया गया है और उसके स्थान पर "कस्तूरी कुंडल बसे मृग ढूढ़े बन माही, ऐसे घट–घट राम है दुनिया देखे नाही[10]" की उक्ति को चरितार्थ किया। ऐसे कथनों से दलितों को एक दार्षनिक समझ मिली और उन्होंने ब्राह्मणवादी सिद्धान्तों के सामानांतर एक स्वतंत्र वैचारिक परंपरा को जन्म दिया जो मानवीय मूल्यों एवं युक्ति परक तत्त्वों पर आधारित थी।

"पन्द्रवीं सदी में उत्तर भारतीय निर्गुण परंपरा का प्रतिनिधित्व कबीर ने किया। कबीर प्रायः एक उग्र प्रकृति के भक्ति संत के रूप में जाने जाते हैं। कबीर ने समकालीन

TH-16287

[9] राम किशोर शर्मा, कबीर ग्रन्थावली पृष्ठ–580

[10] वही पृष्ठ–276

Library

जाति–प्रथा, ऊँच–नीच, पाखंड, आडंबर, मिथ्या एवं सामाजिक षोषण के खिलाफ आवाज उठाई।" कबीर का जन्म जुलाहा नाम जाति में हुआ था जिनका पारंपरिक कार्य कपड़े की बुनाई था। सामाजिक स्थिति में निम्न स्थिति होने के कारण कबीर को जातिगत षोषण का षिकार होना पड़ा। उन्होंने समकालीन दलित समाज की विपन्नता एवं षोषण से कुपित होकर अपने समाज में एक वैचारिक क्रान्ति ला दी। जिसके प्रभाव के फलस्वरूप वर्षो से दबी–कुचली जातियों ने अपने आपको गौरान्वित एवं सषक्त समझा एवं उनमें जातिगत षोषण के खिलाफ एक आत्मविष्वास पैदा हुआ। कबीर ने जन्म के आधार पर जातिगत उच्चता का विरोध किया तथा इसके बदले पर कर्मों पर विषेष बल दिया। उनके अनुसार कर्मो के आधार पर ही मनुष्य के श्रेष्ठ और नीच होने की पुष्टि हो सकती है।

ऊँचे कुल क्या जनमिया, जे करणी ऊँच न होइ।
सोवन कलस सुरे भद्या, साद्यौ नीद्या सोई।।[11]

कबीर के वैचारिक क्रान्ति एवं उनके निर्गुणी दर्षन का प्रभाव अन्य उत्तर भारतीय निर्गुणी संतों पर पड़ा। कबीर की इस परंपरा को आगे चलकर दादू दयाल, रविदास, धर्म दास एवं गुरु घासीदास जैसे भक्ति संतों ने विभिन्न कालक्रमों में आगे बढ़ाया।

इन निर्गुण संतों ने षील, संतोष, त्याग, परोपकार, आत्मोत्थान और नैतिक चरित्रोत्थान के लिये स्वानुभव और सत्संग की उपयोगिता का अत्यधिक प्रचार–प्रसार किया है। उनके अनुसार स्वस्थ एवं सात्विक परिवेष हमारे विचारों, भावों एवं व्यवहार को संतुलित रखता है। हृदय की षुद्धता, दया, समदृष्टि अपरिग्रह आदि मानवीय गुणों का विकास ही सत्संग में होता है। इस प्रकार संतों ने अपने पूर्ववर्ती धार्मिक एवं आध्यात्मिक परंपराओं का विरोध किया। साथ ही वेद का विरोध, वर्ण व्यवस्था का

[11] पुरुषोत्तम अग्रवाल, कबीर साखी और सबद, पृष्ठ–171

विरोध, संस्कृत का विरोध कर इसके स्थान पर लोक के महत्त्व पर अधिक बल दिया गया। इन निर्गुण संतों का लक्ष्य इन परंपरागत विचारों का विरोध करना ही नहीं, बल्कि उसको जड़ से नष्ट करना था जिससे परंपरागत विचारों से उपजी सामाजिक षोषणकारी व्यवस्था के स्थान पर मानवता, नैतिकता, ईमानदारी, त्याग एवं समतामूलक समाज का निर्माण हो सके। समस्त मध्यकालीन निर्गुण संत अनपढ़ और निरक्षर थे। इसलिए उन्होंने षास्त्रीय पद्धति एवं रीति–ग्रंथों, लक्षण–ग्रंथों को अपने विचारों एवं वाणियों में कोई स्थान नहीं दिया। उनके लिए देष को एकता के सूत्र में बाँधने के लिए केवल भावनात्मक दृष्टिकोण की आवष्यकता थी।

प्राथमिक स्तर पर ईष्वर की सत्ता को लेकर सभी निर्गुण संतों में एक विचारगत साम्यता है। यद्यपि ये सभी संत ईष्वर में विष्वास रखते थे, किंतु उन्होंने सगुण रूप का विरोध और उसके स्थान पर निर्गुण ईष्वर की महत्ता पर विषेष बल दिया। कबीर का कहना है कि–

दषरथ सुत तिहुँ लोक बखाना। राम नाम का मरम है आना।।
एक राम दषरथ के जाया। एक राम घट–घट में समाया।।
दषरथ सुत है राजकुमार। मोहे घट–घट वासी प्यारा।।[12]

अर्थात कबीर के अनुसार न तो राम–दषरथ के पुत्र है। उनका राम तो घट–घट में व्याप्त है।

कबीर के विचारों से साम्यता रखते हुए दादू दयाल ने कहा–

"दादू ऐसा बड़ा अगाध है, सूक्ष्म ज्यौंरा अंग।
पुष्प वास से पातला, सदा हमारे संग"।।[13]

[12] कबीर बीजक, पृष्ठ–228
[13] किशना राम विश्नोई दादू दयालः सिद्धांत और कविता, पृष्ठ–22

दादू का कहना है कि ब्रह्म प्रतिक्षण हमारे साथ रहता है। यह अगम्य और स्थूल होकर भी सूक्ष्म है। जिस प्रकार पुष्प में सुगंध है उसी प्रकार वह ब्रह्म प्रत्येक कण में विराजमान है। इसी परंपरा को आगे बढ़ाते हुए गुरु घासीदास ने सर्वव्यापी ईष्वर के बारे में कहा है–

परम बहम परमेश्वर क, नइये कोई आकार
मूर्ति के आकार म, कहाँ समाही निराकार।।
आत्मा चेतन, मूर्ति अचेतन, कइसे होही दुनों के मेल
आत्मा–परमात्मा के बीच में, मूर्ति के का खेल।।[14]

घासीदास बाबा कहते हैं कि परम सत्ता का कोई आकार नही है। वह मूर्ति में कैसे समा सकता है।

वेद विरोध–

निर्गुण संतों ने अपने पूर्ववर्ती चली आ रही वैदिक एवं कर्म कांडीय दर्षन परंपरा का विरोध किया। ग्रंथीय ज्ञान के स्थान पर लौकिक एवं अनुभव आधारित ज्ञान एवं चिंतन पर आधारित ज्ञान को महत्ता दी गई। वस्तुतः यह चिंतन की परंपरा बौद्व, जैन एवं नाथ संप्रदाय से होती हुई निर्गुणी संतों के विचारों में आत्मसात हुई।

कबीर के अनुसार–

पोथी पढ़ि–पढ़ि जग मुवा, पंडित भया न कोइ।
एकै आखिर पीव का, पढ़ै सो पंडित होई।।[15]

पोथी के स्थान पर कबीर प्रेम को अत्यधिक प्रासंगिक मानते हैं उनकी दृष्टि में

[14] राम गोपाल सिद्व–पंथी गीत एंव राष्ट्रीय चेतना (सं. जे. आर. सोनी) पृष्ठ–52
[15] राम किशोर शर्मा, कबीर ग्रन्थावली पृष्ठ–214

वेद एवं पुस्तकीय ज्ञान एक भ्रम है जिसकी व्यवहारिकता में कोई प्रासंगिकता नहीं है। कबीर पंडितों को कहते हैं कि वेद और पुराण छोड़कर एक उस निरंजन, निराकार, ईष्वर की उपासना करो जिससे तुम्हारे समस्त भ्रम दूर हो जाएगे नहीं तो पुस्तकों में ही तुम्हारा समय नष्ट हो जाएगा।

वेद कितेब छांड़ि देउ पांण्डे, ई सब मन के भरमा
कहहिं कबीर सुनहु हो पांडे, ई तुम्हरे है करमा।[16]

वर्ण व्यवस्था का विरोध

सभी निर्गुण भक्ति संत जाँत–पाँत और वर्ग विभेद के प्रबल विरोधी थे। उत्तर भारतीय निर्गुण परंपरा के संतों ने जाति–बहिष्कार एवं इसके विरोध को एक उग्र स्वर प्रदान किया। क्योंकि निर्गुण पंथ के सभी संत निम्न जातियों से आये थे। निम्न जातियों के दुखों एवं विपन्नताओं से इनका सामना होता आया था। संत रज्जब ने इन निर्गुण संतों की जातियों का वर्णन किया है–

रंका नाम कबीर। सदना कुल हीना।।
पद्म, परत, रैदास। धन्ना नापा सुकमीना।।
देगू दीप सुकौन। कौन कीता सुकनेरी।।
विरद् वानरा वंष। जाति सब ही की हेरी
षुक्ल हंस से गोत जाति, नीच न कौ इनतै करैं।।
रज्जब भजन प्रताप से, सकल वैष सिर पै धरे।।[17]

निर्गुणी संतों के निम्न जातीय होने के कारण उन्होंने वर्ण व्यवस्था का प्रबल विरोध किया।

---
[16] श्याम सुन्दर दास, कबीर ग्रन्थावली पृष्ठ–104
[17] रज्जबवाणी, पृष्ठ–420

ये सभी निर्गुण संत एक सार्वभौमिक मानव–धर्म की स्थापना करना चाहते थे। इनकी दृष्टि में भगवत् भक्ति में सबको समान अधिकार है।

कबीर कहते हैं–

जाति–पाँति पूछे नहीं कोई
हरि को भजे सो हरि का कोई।।[18]

संस्कृत का विरोध–

निर्गुण भक्ति संतों ने विषिष्ट वर्ग की भाषा संस्कृत के स्थान पर लोक भाषा को अपने विचारों के प्रचार–प्रसार का माध्यम बनाया। उनके अनुसार संस्कृत में विषयों की गूढ़ता और उनकी पद्धतियाँ इतनी जटिल हो गई है कि उनको समझने के लिए भाष्यों एवं टीकाओं की आवष्यकताएँ पड़ने लगी है। इनके विपरीत लोक भाषा जन–प्रिय है और इसे आसानी से भी समझा जा सकता है इसलिये कबीर तथा उनके पूर्ववर्ती तथा परिवर्ती संतों ने अपने विचारों को जनसाधारण तक पहुँचाने के लिए लोक–भाषा को अपना माध्यम बनाया था। कबीर ने कहा था–

"संस्कृत है कूपजल, भाषा बहता नीर।"[19]

सम्पूर्ण उत्तर भारत में थोड़े बहुत भौगोलिक विषमताओं के साथ लोक भाषा का प्रयोग किया गया। भोजपुरी, अवधी, बृज, पंजाबी, बुंदेली, सौरसैनी, बघेली एंव छत्तीसगढ़ी भाषा को प्रचार–प्रसार का साधन बनाया गया।

भक्ति आंदोलन न केवल वैचारिक संघर्ष, समता, एकता, बंधुत्व एवं सार्वभौमिक मानवता का पाठ पढ़ाकर एक सामाजिक क्राति को जन्म दिया बल्कि एक सांस्कृतिक पुर्नजागरण के भी बीज बोए। इस आंदोलन का प्राथमिक उद्देष्य संसार के विभिन्न

[18] पुष्पपाल सिंह, कबीर ग्रन्थावली, पृष्ठ–5
[19] श्याम सुन्दर दास (संपादक) कबीर ग्रन्थावली पृष्ठ–5

विषयों से निवृत्ति नहीं वरन् जीवन के विभिन्न सोपानों में रम कर परमतत्त्व की प्राप्ति करना है। इसलिए निर्गुण भक्ति आंदोलन ने जन सामान्य की अवस्था, पारिवारिक परिवेष, सामाजिक रीति–रिवाजों, मान्यताओं, अभिरूचियों, पर्वों आदि को महत्व दिया।

इसी प्रक्रिया में भक्ति आंदोलन ने अपने सामानांतर चले आ रहे पूर्ववर्ती सामाजिक व्यवस्था के विपरीत स्वतंत्र रीति–रिवाजों एवं सामाजिक एवं सांस्कृतिक अभिव्यक्तियों को जन्म दिया। जो बौद्धकता की कसौटी पर खरी उतरने के साथ–साथ लचीलेपन को आत्मसाात किए हुए थी। प्रमुख रूप से भक्ति आंदोलन के सांस्कृतिक पहलू प्रेम, करूणा, भ्रातत्व, सत्य, अहिंसा तथा ईष्वर एवं जीवन के गूढ़ रहस्यों के इर्द–गिर्द घूमते थे जिनमें दार्षनिक एवं भावात्मक पुट की विषेषता थी। कलात्मक दृष्टि से भजन, वचन, अंभग, दोहा, सोरठा एवं पद का निर्माण किया गया जिनका ताना बाना मानव जीवन के विभिन्न पहलुओं से लिया गया। अपने इन विचारों को कला के माध्यम में अभिव्यक्त करने के लिये लोक नृत्य एवं लोक संगीत के उत्थान एवं उसकी पुर्नरचना में भक्ति आंदोलन ने एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। "अखिल भारतीय स्तर पर विभिन्न पंथों एवं संप्रदायों से संबद्व लोक नृत्यों एवं लोक संगीत का प्रादुर्भाव भक्ति आंदोलन की ही देन थी। सगुण भक्ति एवं निर्गुण भक्ति के सांस्कृतिक कलाओं में योगदान को दो विभिन्न वर्गों में बाँटकर देखा जा सकता है। सगुण भक्ति ने अपने प्रारंभिक दौर में भरत नाट्यम, कुजीपुड़ी, ओडिसी, मोहिनी आट्म आदि नृत्यों के संरचना में योगदान दिया। इन नृत्यों के द्वारा समर्पण एवं भक्ति के द्वारा सर्वोच्य ईष्वर को प्राप्त करने तथा उसकी इहलौकिक एवं पर लौकिक लीलाओं को चित्रण किया गया।"[20] बाद के वर्षों के उत्तर भारत में रामलीला एवं रासलील जैसे नाट्य–नृत्य षैलियों का निर्माण हुआ।। इसके सामानांतर ही पूर्वी भारत में चैतन्य ने संकीर्तन एवं

[20] श्यामा चरण दुबे भारतीय समाज, पृष्ठ–36–37

आसाम के षंकरदेव ने सत्तरा नृत्य का सृजन कर सगुण भक्ति धारा का प्रचार–प्रसार किया।[1] इन सभी लोक नृत्यों एवं नाट्यों की विषेषता थी कि इन सभी कलाओं में भगवान के भौतिक एवं लौकिक रूप को मानवीय आकार में अभिव्यक्ति किया गया।

इसके विपरीत निर्गुण भक्ति संतों ने भी अपने विचारों के प्रचार–प्रसार हेतु भाव परक कलाओं की अपेक्षा मुक्त एवं स्वछंद प्रकृति की कलाओं को अपने प्रचार–प्रसार का माध्यम बनाया। ऐसी स्वछंद लोक कलाओं का सम्बंध दलित एवं षोषित समाज से रहा है। एक लंबे समय तक दलित मौखिक परंपरा एवं उनकी मनोवैज्ञानिक प्रवृत्तियों से सम्बद्ध एवं उनकी वाहक होने की वजह से निसंकोच की उन्होंने निर्गुण संतों को अपनी पुर्नसंरचना करने के लिए प्रेरित किया। मार्गीय प्रवृति की न होने के कारण इन लोक कलाओं ने सहज ही भौगोलिक भाषायी, सांस्कृतिक दषाओं के अनुसार अपने आप को ढ़ाल दिया।

उत्तर भारत में निर्गुण भक्ति धारा ने लोक कलाओं में अपना विस्तृत योगदान दिया है। कबीर, रैदास एवं द्रादू ने वाणियों को जन–जन तक पहुँचाने के लिए भजन, मंगल गीत एवं चौका गीतों में इन लोक कलाओं को ढ़ाल लिया गया। इन कलओं की प्रकृति मार्गीय और लोक में न होकर मध्यम कलाओं में अभिव्यक्त थी। वस्तुतः मंगल गीत अथवा भजन एक समूह में बैठकर निराकार ईष्वर की महिमा का गुणगान एवं भौतिक जीवन के विभिन्न विषयों पर ये गीत केन्द्रित होते थे। आष्चर्य की बात यह है कि इस समाज ने अपने जीवन के विभिन्न संकेतों, मौखिक परंपराओं, रीति–रिवाजों एवं दिन–प्रतिदिन प्रयोग में आने वाले विभिन्न वस्तुओं को इन नवनिर्मित भजन एवं गीतों में हुबहु आत्मसात कर उन्हें अपनी धार्मिक एवं आध्यात्मिक अभिव्यक्तियों का माध्यम बनाया।

सम्पूर्ण उत्तर भारत के विभिन्न सांस्कृतिक क्षेत्रों में निर्गुण पंथ का प्रभाव एक सा रहा है। थोड़े–बहुत भाषायिक रूपांतरण एवं परितर्वन के साथ कबीर पंथ, दादू पंथ एवं रैदास पंथ से संबंधित मौखिक परंपराएँ एक सी रही है। उत्तर भारत के सांस्कृतिक क्षेत्रों यथा अवध, बुंदेलखंड, सौरसेन, बघेलखंड एवं छत्तीसगढ़ में निर्गुणी पंथ का प्रचार–प्रसार विभिन्न भौगोलिक सीमाओं को तोड़ता लगभग एक सा प्रतीत होता है। इन सभी सांस्कृतिक क्षेत्रों के परिपेक्ष्य में कबीर एवं रैदास पंथ से संबंधित भजन एवं चौका गीत परंपराएँ एक सी है। केवल मौखिक परंपरा समय–समय पर सामाजिक परिवर्तनों के अनुसार बदलती रही है। तुलनात्मक दृष्टि से देखे तो पूर्वी उत्तर प्रदेष में कबीर के भजन सीधे तौर पर अत्यधिक भक्तिमय और भावात्मक होते है वहीं बुदेलखंड में कबीर के भजनों में भक्ति के साथ–साथ श्रंगारिकता भी झलकती है। बुंदेलखंड सदैव अपने विभिन्न राग रंगों के लिये जाना जाता है फलस्वरूप बुंदेलखंड को लोकमानस लौकिक एंव अलौकिक विष्व की बाते नायिका और नायक के प्रणय और विरह के माध्यम से निराकार ईष्वर एवं जीव को अभिव्यक्त करता है।

बुंदेली कबीर भजन के अनुसार–

मैं न लड़ी मोरो सैंया रिसा गवो?
मैं न लड़ी मेरो सैया........
न मैं बोली न मैं चाली
ओढ़े ओढ़नी पड़ी रही
मैं न लड़ी........ मोरो सैंया।[21]

इस बुंदेली कबीर भजन नई नवेली दुल्हन की तुलना षरीर से की गई है तथा सैंया (पति) के रूप में आत्मा को प्रदर्षित किया गया है। पत्नी की षिकायत है उसने

[21] बुंदेली कलाकार इसुरी लाल से निजी साक्षात्कार से प्राप्त। IGNCA, New Delhi

अपने पति से कोई लड़ाई नहीं की है और न उसने कुछ बुरा बोल–चाल किया है। वह तो सिर्फ ओढ़नी लपेटकर चुप–चाप लेटी रही। इसके बावजूद भी उसका पति (आत्मा) उससे रूठ गई अर्थात् वह षरीर छोड़ कर चली गई।

भजन और गीत परंपरा के सामानांतर षोषित एवं दलित समाज निर्गुण भक्ति के प्रभात में आकार नृत्यों के माध्यम से भी अपने सामाजिक, धार्मिक एवं आध्यात्मिक आयामों को अभिव्यक्त किया है। छत्तीसगढ़ के पंथी नृत्य को निर्गुण भक्ति आंदोलन के लोक कलाओं में प्रयोगधर्मी प्रक्रिया का एक महत्त्वपूर्ण अवयव अथवा अंग माना जा सकता है।

गुरु घासीदास : जीवन और दर्षन

छत्तीसगढ़ में निर्गुण भक्ति परंपरा को प्रारंभ करने का श्रेय गुरु घासीदास को जाता है।[22] "गुरु घासीदास को मध्य भारत के धार्मिक एवं सांस्कृतिक पुर्नजागरण का जनक कहा गया है।" गुरु घासीदास का जन्म चमार जाति[23] में माघी पूर्णिमा के दिन 1756 ई० में रायपुर के निकट गिरोधपुरी नामक छोटे से गाँव में हुआ था। यह वह समय था कि जब मध्य भारत का यह क्षेत्र जिसे आधुनिक छत्तीसगढ़ कहा है, सामंतवाद, आडंबर, जातिगत षोषण एवं पाखंड के धुँए में सुलग रहा था। मराठा साम्राज्य के उपवर्ग भौसलें राजवंष द्वारा यह भूभाग षासित था। इस राज्य में करो की अधिक माँग, बंधुआ मजदूरी एवं जवरिया बेगारी ने दलितों एवं कृषकों को आर्थिक तंगी एवं मानसिक षोषण में झोंक दिया।[24] वहीं इसके सामानांतर पूर्ववर्ती चली आ रही वर्णाश्रम व्यवस्था जाति आधारित षोषण को निरंतर बढ़ावा दे रही थी। मंदिरों एवं सार्वजनिक स्थलों पर दलितों के प्रवेष की मनाही एवं जातिगत भेदभाव के कारण दलितों में धार्मिक एवं सामाजिक असंतुष्टता की लहर फैल गई।

[22] हरी ठाकुर, छत्तीसगढ़ की महान विभूतियाँ, पृष्ठ–1
[23] Briggs, Geo. W.- The Chamars, Pg-222
[24] पदमा डडसेना, छतीसगढ़ के सामाजिक जीवन पर गुरूघासी दास का प्रभाव, पृष्ठ–5

राज्य एवं उच्च जातीय धार्मिक संस्थाओं के परस्पर गठजोड़ ने दलितों का जीवन अत्यन्त मुष्किल कर दिया था। ऐसे समय में गुरु घासीदास का उदय इस वर्ग के लिये एक विलक्षण एवं महत्वपूर्ण घटना थी। गुरु घासीदास के द्वारा बताये मार्ग पर न केवल इस वर्ग ने अपनी सामाजिक पहचान बनाई बल्कि अपने सामानांतर चले आ रहे ब्राह्मण धर्म को चुनौती देकर एक नये पंथ की रचना की। जो कालांतर में "सतनाम पंथ" के रूप में प्रसिद्ध हुआ। "सतनाम पंथ" के उद्भव एवं उसके प्रचार–प्रसार के संबंध में अनेक मौखिक परंपरायें है जो वस्तुतः एक–दूसरे के विपरीत उभरकर आती हैं। इन मौखिक साक्ष्यों में तीन प्रकार के सतनाम पंथों की चर्चा की जाती है। प्रसिद्ध समनामी लेखक शंकर लाल टोडर बताते है कि छत्तीसगढ़ के सतनाम पंथ की वास्तविक जड़े उत्तर भारत में 17वीं सदी में प्रारंभ हुए "सतनाम पंथ" जुड़ी है। उनका कथन 17वीं सदी में हरियाणा के नारनौल में स्थापित "सतनाम पंथ" तथा औरंगजेब की दमनात्मक नीति के प्रतिक्रिया वष नारनौल से सतनामियों का मध्य भारत के जंगलों मे विस्थापन इस पूरी लंबी प्रक्रिया को रेखांकित करता है। शंकर लाल टोडर के ही अनुसार गुरु घासीदास के पितामह मेदनी दास अपने परिवार जनों के साथ रायपुर के पास गिरोध गाँव में बस गये थे। उन्हीं की षिक्षाओं को कालांतर में एक नये रूप में गुरु घासीदास ने पुनर्स्थापित एवं पुर्नव्याख्ति किया।[25]

यह कथन अपने आप में विपरीतार्थात्मक है जो कि गुरु घासीदास की सतनाम पंथ में उनकी विषिष्ट स्थिति का अतिक्रमण करता है और उनकी मौलिक षिक्षाओं को छत्तीसगढ़ी परिप्रेक्ष्य में अनोखी न बताकर उनका आयात हरियाणा के नारनौल से बताता है।

दूसरी मौखिक एवं लोक परंपरा में गुरु घासीदास के पंथ को स्थानीय उत्पत्ति में मान्यता दी गई है। इनके अनुसार उत्तर भारतीय सतनाम पंथ एवं छत्तीसगढ़ी सतनाम

[25] शंकरलाल टोडर, निजी साक्षात्कार, देवपुरी (रायपुर) 10.09.07

पंथ में मौलिक भिन्नताएँ है, जो इसकी पंथ संरचना मौखिक परंपराओं एवं धार्मिक अनुष्ठानों में देखी जा सकती है। नारनौल के सतनामियों को प्रायः "मुड़िया" कहा जाता है। इनके पंथ में दीक्षित होने के लिये सिर के बाल मुड़वाकर पीछे चोटी रखना आवष्यक है तथा नारनौल के सतनामियों में उच्च वर्णीय समाज की अधिकता होने के कारण इन्होंने इस पंथ के दर्षन एवं रीति–रिवाजों को अपने अनुसार परिभाषित किया। मूलतः निम्न जातीय समाज को यह पंथ अधिक आकर्षित नहीं कर पाया। अंततः यह एक छोटा सा क्षेत्रीय पंथ बन कर रह गया।

तीसरे प्रकार की परंपरा में उत्तर भारत के सतनामियों की थोड़ी बहुत संख्या उत्तर प्रदेष के बारांबकी जिले में रहती है। ये लोग स्वयं को बाबा जगजीवन दास का अनुयायी मानते हैं। बाबा जगजीवन दास के ऐतिहासिक वृत्त के बारे में साहित्यिक स्त्रोत की अत्यधिक कमी है। संभवतः उनका जीवन काल 18वीं सदी माना जाता है। बुल्ला साहिब और गोबिन्द साहिब इस परंपरा के अन्य संत थे। इस पंथ ने "अगदू" परंपरा चलाकर अपने आप विषिष्ट बनाया जिसके अनुसार प्रत्येक अनुयायी को अपने हाथ में धागा बाँधना पड़ता था जो उनकी अलग पहचान बनाता था। इन्हीं संतों ने कालांतर में छत्तीसगढ़ में अपने प्रवास के दौरान सतनाम पंथ का प्रचार–प्रसार किया। इन तीनों परंपराओं में सतनाम पंथ की स्थानीय उत्पत्ति का सिद्धांत अधिक तर्क संगत लगता है क्योंकि छत्तीसगढ़ का सतनाम पंथ यहाँ के लोक–जीवन का प्रतिनिधित्व करता है। अन्य सतनामी परंपराओं के विपरीत इसने व्यापक स्तर पर पिछड़ी एवं निम्न जातीयों को अपनी ओर आकर्षित किया।

सामाजिक दार्षनिक एवं धार्मिक स्तर पर गुरु घासीदास ने अपने पूर्ववर्ती निर्गुण भक्ति संतों कबीर, रैदास एवं दादू दयाल के समान ही निर्गुण पंथी विचारों एवं षिक्षाओं का प्रचार–प्रसार किया। "छत्तीसगढ़ में निर्गुण भक्ति परंपरा का सूत्रपात कबीर के षिष्य

धर्मदास[26] ने 16वीं सदी के उत्तरार्द्ध में सूत्रपात किया। आधुनिक छत्तीसगढ़ का कवर्धा जनपद जो कबीरधाम षब्द का अपभ्रंष है, कबीर की षिक्षाओं के प्रचार–प्रसार के केन्द्र के रूप में धर्मदास ने स्थापित किया था।" छत्तीसगढ़ के कबीर पंथ के प्रचार–प्रसार ने वहाँ की स्थानीय लोगों के मन–मष्तिष्क पर एक अमिट छाप छोड़ी। अंततः जिसकी परिणति 18वीं सदी के मध्य में गुरु घासीदास के स्थापित "सतनाम पंथ" के रूप में हुई। अतः हम यह कह सकते है कि सतनाम की षिक्षाओं को कबीर पंथ ने छत्तीसगढ़ में एक आधार प्रदान किया।

मूलतः गुरु घासीदास के "सतनाम पंथ" की स्थिति एक स्वतंत्र ने होकर विभिन्न बाहरी प्रभावों की मिली–जुली दार्षनिक, धार्मिक एवं सामाजिक प्रभावों का परिणाम था जिसने छत्तीसगढ़ के राजनैतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिदृष्यों में एक विलक्षण परंपरा का सूत्रपात किया। स्थानीय स्तर पर लोक, रीति–रिवाज, संस्कृति, लोक दर्षन एवं उससे जुड़े हुए विभिन्न आयामों को अधिक अहमियत दी गई।

टी॰ आर॰ खुन्टे के अनुसार गुरु घासीदास के जीवन काल के दो सौ वर्ष पहले सतनाम की अवधारणा कबीर और रैदास के विचारों में आ गई थी। कबीर ने सतनाम को जीवन का सार कहा। 'सत के साथ नाम' के जुड़ जाने से रूप, संज्ञा और गुण के आधार पर वह नाम सत्य है। जैसे लोहा कहने पर उसके नाम, रूप, संज्ञा, और गुण का बोध होता है जो प्रत्येक परिस्थिति में धातु के अनुरूप सत्य है जो चेतना की स्थिति को दर्षाता है। यही वह सतनाम चेतन है जो हर जीव निर्जीव का संचालन करता है। कबीर ने इसी सत्य को प्रेम के साथ जोड़ते हुए कहा–

जिहि घट प्रेम न प्रीति रस नहि जाने सतनाम
ते नर इस संसार में उपजि भये बेकाम

---

[26] Saurabh Dube, Untouchable Pasts, Pg. 42

अगम अगोचर गमि नहीं जहाँ जगमगे जोति

जहाँ कबीरा बंदगी पाप पुण्य नहीं होति।।[27]

कबीर के सामानांतर रैदास ने भी सतनाम के महत्व को अपने विचारों एवं वाणी द्वारा अभिव्यक्त किया–

सांच सुमिरन नाम विसासा। मन वचन कर्म कहे रविदासा

सच्चा सुख सत् धरमहि धन संचय सुख नाहि

धन संचय दुख खान् है रविदास समुझि मन माहि।।[28]

(रविदास जी मन, वचन और कर्म से कहते है सत के नाम का स्मरण ही अपने आप में पूर्ण है। सच्चा सुख सत के धर्म में ही है, न कि धन के संचय में। रविदास जी मन को समझा कर कह रहे है धन का संचय दुख की खान है जिससे मोह, लोभ, क्रोध एवं ईर्ष्या उत्पन्न होती है।)

रैदास के उत्तवर्ती 17वीं सदी में नारनौल में पनपे "सतनामी आंदोलन" ने भी निर्गुणी सतनाम की अवधारणा को प्रस्तुत किया। इस अवधारणा के अनुसार सतनाम का स्वरूप निराकार एवं सर्व व्याप्त है वह चेतन है तथा प्रत्येक जीवन में उसका निवास है। नारनौल के सतनामी संप्रदाय की कोटवा (बाराबंकी) षाखा के सतनामी संत जगजीवन दास ने सतनाम के स्वरूप को अपनी वाणियों द्वारा परिभाषित किया है। इनका कहना है कि "मौन स्मरण करो" उसी से संसार में मुक्ति प्राप्त हो सकेगी। उनके कथनानुसार सतनाम ही जगत का कारण एवं जनक है। उसका न तो आदि है और न ही अंत, उसे कोई वाह्य सत्ता नहीं चलाता बल्कि प्राकृतिक नियमों द्वारा स्वचालित है–

उनके कथनानुसार–

[27] टी. आर. खुन्टे, सतनाम दर्शन (कबीर दर्शन), पृष्ठ–137 से उद्धृत

[28] वही पृष्ठ–317 से उद्धृत

साधो सतनाम जपो प्यारा
सतनाम अन्तर धुनि लागी, बास किये संसारा।
ऐसे गुप्त चुस्तहु सुमिरहु, बिरलै लखै निहारा
तजहु विवाद कुसंगति सबकै, कठिन अहै यह धारा।
सतनाम के बेड़ा बांधहु, उतरन का भवतारा
जनम पदारथ पाई भक्तमह, आपन भरहु संभारा
जगजीवन यह सतनाम, पापी के तिन तारा।।[29]

गुरु घासीदास का ''सतनाम'' मानवीय संवेदनाओं, भावनाओं एवं उनके सामाजिक, आध्यात्मिक पहलुओं को निरूपित करता है। गुरु घासीदास के अनुसार ''सतनाम'' के द्वारा ही मनुष्य अपने विभिन्न सामाजिक, धार्मिक एवं आध्यात्मिक उपादानों को प्राप्त एक स्वस्थ एवं षोषण विहीन समता मूलक समाज की रचना कर सकता है।

''सतनाम'' के संदर्भ में गुरु घासीदास की मौखिक वाणियों को सतनामी समाज में विभिन्न रूपों में रूपांतरित कर उसके सामाजिक एवं धार्मिक पहलुओं को उजागर किया है। टी. आर खुन्टे के अनुसार''गुरु घासी ने आत्मा एवं ईष्वर दोनों की ही सत्ता को नकारा। गुरु घासीदास का ''सतनाम'' एक अलौकिक सत्ता न होकर मानव की हृदय निकली हुई संवेदना है जिसे प्रेम कहते हैं। प्रेम चाहे किसी एक व्यक्ति से हो या फिर मानव समाज, प्रेम ही कहलाता है, जिससे राग, लय, धुन, तरंग आदि अपने आप उत्पन्न होने लगता है। सामूहिक प्रेम भाव ही मानवता कहलाती है जहाँ से समता, सम्मान, बंधुत्व और न्याय की भावना जागृत होती है तथा जन–कल्याण का मार्ग प्रशस्त होता है''।[1] यहाँ पर गुरु घासीदास का सतनाम अत्यधिक प्रायोगिक प्रतीत होता है। सम्पूर्ण समाज को प्रेम की महत्ता समझाने के लिए गुरु घासीदास ने प्रेम को षास्वत

[29] वही पृष्ठ–186 से उद्धृत

समझाकर इसे "सतनाम" कहा। प्रेम न केवल मानव से ही अपितु संपूर्ण जगत के प्राणियों से प्रेम की भावना रखनी चाहिए। यही प्रेम आगे चलकर षांति और अहिंसा को जन्म देता है। प्रेम का षास्वत प्रयोग निस्वार्थता में है अर्थात् मानव कल्याण के प्रति निस्वार्थ प्रेम ही प्रासंगिक है। स्वार्थवष किया गया प्रेम मनुष्य को लोभ, लालच, दंभ एवं माया इत्यादि में लिप्त कर देता है। लोभ, लालच, माया, दंभ से उत्पन्न कायिक सुख के नष्ट हो जाने से मनुष्य केवल पछताता रहता है और अनजाने पन में भाग्य को कोसता रहता है। अपूर्ण इच्छा या स्वार्थ पूर्ति न होने पर मनुष्य में दया, करूणा एवं सहानुभूति का भाव धीरे–धीरे समाप्त हो जाता है और ऐसी स्थिति में वह निष्ठुर एवं कठोर बन जाता है। अतः ऐसी स्थिति में निस्वार्थ सच्चे प्रेम को ही गुरु घासीदास ने सतनाम कहा है। गुरु घासीदास के अनुसार सच्चा प्रेम ही सत–चेतन है जो प्राणी जगत का संचालन करता है। उनके अनुसार जीव–जगत का अस्तित्व जड़ और चेतन के रूप में है। जड़ परिवर्तनषील है और समय एवं परिस्थिति के अनुसार उसका रूप, आकार, एवं गुण बदलते रहते है। इसके विपरीत चेतना अपरिवर्तनषील है। चेतना ही जड़ के विभिन्न उपादानों संज्ञा, गुण, रूप आदि का संचालन करती है। इसी चेतना को गुरु घासीदास के दर्षन में "सतनाम" कहा गया है, जो षास्वत एवं अपरिहार्य है और इसी के द्वारा ही सम्पूर्ण जगत का संचालन होता है।

सत् से धरती खड़े, सत् से खड़े आकाष
सत् से पवन अरू पानी, चंदा सूरज प्रकाष।।
सत् सृष्टि उपजे है कह गये घासीदास......
ज्ञान के प्रकाष मा देखौ चारो धाम गा,
सबो जीव ला समझौं एके समान गा[30]

[30] वही पृष्ठ–244–245

सत्य, अहिंसा प्रेम अरू, करूणा दया समान।

क्षमा, दान को राषि के पावन मोक्ष प्रमाण।।[31]

(सत्य से धरती का अस्तित्व है, सत्य से आकाष का अस्तित्व और सत्य से वायु, जल, चन्द्रमा और सूरज का प्रकाष है। गुरु घासीदास कहते हैं कि सत्य से ही सृष्टि उत्पन्न हुई। ज्ञान के प्रकाष में सत्य रूपी चारों धामों को देखता हूँ और सभी जीवों का एक समान देखता हूँ। सत्य, अहिंसा, प्रेम और दया एक समान गुरु घासीदास ने ब्रह्म, ईष्वर, जीव एवं जगत के प्रकृति एवं अस्तित्व के रहस्मयी विचारों से अपने आप को दूर रखा और न ही उन्होंने आत्मा–परमात्मा के संबंध को कोई महत्व दिया। इसके स्थान पर गुरु घासीदास ने आम–जनजीवन से जुड़ी हुई समस्याओं एवं उनके निराकरण को केन्द्र बिंदु में रखकर अपने विचारों से उसे हल करने का प्रयास किया। इस प्रक्रिया में न केवल उन्होंने षोषित समाज मानसिक कौतुहल को दूर किया वरन् उनकी सामाजिक, आर्थिक, नैतिक एवं राजनैतिक दषा सुधारने का प्रयास किया।

गुरु घासीदास का "सतनाम" वस्तुतः एक काल्पिनिक न होकर एक व्यवहारिक सत्य पर आधारित है जो जनमानस को अलौकिक (असत्य) जगत से निकालकर लौकिक जगत में लाने का प्रयास करता है। सादा जीवन उच्च विचार के सिद्धांत पर चलते हुए वह मनुष्य एक साधारण मनुष्य बने रहने की सलाह देते है" उनके अनुसार "मोर संत मन, भोला काकरो ले बड़े झन कइहा। नई तो भोला हुदेसना मा हुदसे कस भागही।" (मुझे सिर्फ एक संत मानो, मुझे किस लिये तुम किस लिये बड़ा कहोगे। यदि तुम मुझे महापुरुष कहोगे तो मेरा अपमान होगा।)

इसी परंपरा में भूषण लाल जागड़े के विचारों ने सतनाम के आलौकिक पक्षों पर एक दूसरे प्रकार से परिभाषित किया, "गुरु घासीदास ने मानव षरीर को एक मंदिर

[31] वही पृष्ठ–245

माना। उनके अनुसार मानव तीन तत्त्वों का मेल है, प्रथम स्थूल पदार्थ जिससे षरीर का निर्माण हुआ द्वितीय सूक्ष्म पदार्थ जिससे मन की रचना हुई तथा अंत में तृतीय आत्मा जो षरीर का जीव है तथा षरीर और मन दोनों का आधार है। प्रथम तथा द्वितीय श्रेणी के पदार्थ नाषवान है तीसरा पदार्थ अमर। जिस प्रकार षरीर को जीवन देने वाली आत्मा है उसी प्रकार सारे संसार को सत्ता देने वाला परमात्मा है। गुरु घासीदास इसी अदृष्य षक्ति को निर्गुण ब्रह्म निराकार, निरंजन, सतनाम, सतपुरुष आदि मानते है।[1] आत्मा को नाम के षब्द के जप करके, प्रेम, त्याग (काम, क्रोध, लोभ, अहंकार) दोष से अलग रहकर अहिंसा अपनाकर मन को एकाग्रचित कर निराकार निर्गुण ब्रह्म से साक्षात्कार कर सकता है तथा परम् पद् प्राप्त कर सकता है। गुरु घासीदास के अनुसार सतनाम सर्वव्याप्य और सर्वषक्तिषाली है सतनाम ने इस सम्पूर्ण सृष्टि एवं उसमें रहने वाले सभी जीवों की रचना की है।

गुरू घासीदास का सतनाम दर्षन मूलतः अति धार्मिक एवं आध्यात्मिक न होकर समाज से जुड़ी हुई विभिन्न विषमताओं एवं षोषण के विरूद्ध एक संघर्ष का आह्वान था। उन्होंने अपने समकालीन समस्याओं के निराकरण के लिये सर्वप्रथम आवाज उठाई और एक मानवीय मूल्यों पर आधारित समाज की रचना का मॉडल प्रस्तुत किया जिसमें सत्य, अहिंसा प्रेम, समता, भातृत्व का समिश्रण था। तत्कालीन समाज में धर्म आधारित षोषण के विरूद्ध सर्वप्रथम उन्होंने ब्राह्मण धर्म के आधार ईष्वर की आलोचना की। उन्होंने ब्राह्मणवादी ईष्वर को निर्जीव एवं एक बहेलिया बतलाया। "तोर भगवान हर भगवान नोहय, मोर भगवान (अपन घट) हर भगवान आय, तोर भगवान एक बहेलिया आय।" भगवान के अस्तित्व की आलोचना के साथ उन्होंने मंदिरों की सत्ता का बहिष्कार किया क्योंकि उन्होंने जान लिया कि मंदिर की परोक्ष एवं अपरोक्ष रूप में षक्ति ब्राह्मण

[32] भूषण लाल ज़ांगड़े सत्य ज्ञान, पृष्ठ–12–13

वर्ग अथवा पुरोहित वर्ग के हाथ में है जो अपने स्वार्थ के लिये विभिन्न संस्थाओं एवं माध्यमों का सहारा लेते है। इसलिए उन्होंने मंदिरों में जाने का विरोध किया।

मंदिरवा मा करे जाइबो, अपने घर के देवला हि मनाइबो
मंदिर के देवा हलिया नहीं डोलय हो, अपने घर के देवलाहि मनाइबो।।[33]

ईष्वर की मूर्ति रूप में भृर्त्सना करके उसके सामानांतर एक निर्गुण ईष्वर (सतनाम) की उपासना कर गुरु घासीदास ने बल दिया। उनके अनुसार यह निर्गुण ईष्वर षोषित समाज के भावनाओं के अत्यधिक समीप है और उसे आत्मषुद्धि के द्वारा सरलता पूर्वक पाया जा सकता है। गुरु घासीदास के इसी ईष्वरी सत्ता के विमर्ष को मौखिक पंरपराओं में बड़ी सुन्दरता पूर्वक ढ़ाला गया है। ये परंपराएँ आज भी छत्तीसगढ़ के सतनामी समाज में बड़ी लोकप्रिय है।

सत् बसे हावय तोरे तन मन में, काबर खोजत हावस हसां तै बन–बन मैं
विरथाएती ओती मन ला लगाये, तोर जिनगी सहारा सतनाम हो
ईष्वर कहाँ खोजन जाबे, असल ईष्वर तो ष्वांस हो,
मंदिर तोर कामा भीतर, जहाँ जीवरा करे निवास हो
सुन्दर कामा हावै तोर, ये मन्दिर के कचरा ला टार दे
ज्ञान के दिया ला जला के मन मन्दिर मा बार दे
यही असली पूजा बताए हावय हमर गुरु घासीदास हो।
सतनाम सत्यरूप हिरदय में बिराजे, अइसन बताए हावय बालकदास हो।[34]

जाति–पाँति का विरोध–

गुरु घासीदास ने अपने पूर्ववर्ती निर्गुण संतों की परंपरा को आगे बढ़ाते हुए

[33] टी. आर. खुन्टे, सतनाम दर्शन पृष्ठ–252
[34] वही पृष्ठ–380

जाति–पाँति, छुआ–छूत का विरोध किया। उनके अनुसार पूरा संसार भेद–भाव के चक्कर में पड़ा हुआ। छुआ–छूत, ऊँच–नीच, अमीर–गरीब, काला–गोरा की परिकल्पना ने पूरे समाज को बाँट दिया। इन सभी बुराइयों के समाप्त किये बिना एक स्वस्थ समाज की रचना नहीं की जा सकती। उनके अनुसार–

छूत–अछूत नहीं कोई, सब कोई एक समान
हिंदू मुस्लिम, सिख, ईसाई, सबला गढ़े एक भगवान।।
"भेद–भाव के चक्कर म, फंसे हवय संसार।
मुल्ला, पंडित संत फकीरा , सब जन्में एके द्वार।
करिया होवय चाहे गोरिया, एक चमड़ा के खाल।
तन के भीतर देखब म, लहू के रंग हे लाल"[35]

अथवा

मनिखे मनिखे एक हे, अऊ पीरा सबके एक
मनिखे ल मनिखे जानिस, वही मनखे हे नेक।।[36]

अहिंसा की महत्ता

गुरु घासीदास ने अहिंसा पर अधिक बल दिया। उनके अनुसार संसार के सभी जीव एक समान है तथा उनके सुख–दुख एक–दूसरे से साम्यता रखते है। किसी भी प्राणी का वध महापाप है सभी प्राणियों के मध्य समता, दया, करूणा बनाये बगैर सतनाम की प्रासंगिकता अधूरी है। गुरु घासीदास तत्कालीन छत्तीसगढ़ में दंतेष्वरी एवं रतनपुर की देवी के मंदिरों में व्याप्त बलि प्रथा का कड़ा विरोध किया। गुरु घासीदास ने मानव के अलावा पषुओं के प्रति दया भाव रखने का संदेष दिया। उन्होंने कहा "तोर पीरा हर ओत केच अकन आप जतका मोर आय। कोनो जीब ला झन मारबे।"

---

[35] राम प्रसाद कोसरिया, सतनाम के विरवा, पृष्ठ–11
[36] वही पृष्ठ–10

षील–संतोष, निष्कामता, संयम–तप पर बल

गुरु घासीदास ने षोषितों के मनोविज्ञान एवं उनके सामाजिक परिदृष्यों में रहकर उन्हें सतमार्ग पर चलने का उपदेष दिया। उन्होंने षुद्ध आचरण, षील, मानवीय मूल्य, श्रम की महत्ता, निस्वार्थता, मितव्यता, संतोष, दया, करूणा, क्षमा आदि का दैनिक जीवन में प्रयोग पर अत्यधिक बल दिया।

सामाजिक आचरणों में संबंधों की मधुरता, पराई स्त्री को माँ और बहिन समझना, चोरी, ईष्या, क्रोध एवं दूसरे की निंदा न करना पर अधिक बल दिया जिससे मानव के मध्य एक विष्वास एवं सौहार्द की प्रवृत्ति मजबूत हो। भाग्य वादिता जैसी मानसिक विकृति एवं उसकी अप्रासंगिकता का गुरु घासीदास ने विरोध किया साथ ही श्रम की उपादेयता पर उन्होंने बल दिया।

"भाग भरोसा भरे न पेट
करम बिना भरे न भंडार।
साधु, संत, फकीरा गावय
सत बिना सिरजे न संसार।।"[37]

वस्तुतः गुरु घासीदास ने लौकिक एवं वर्तमान जीवन की उपदेयता एवं उसमें निहित विभिन्न सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक पहलुओं के भीतर रहते हुए मानव को विभिन्न लोकाचारों के साथ क्रमिक विकास करने का संदेष दिया जिनकी समाज में प्रायोगिक स्तर पर एक प्रासंगिकता थी। गुरु घासीदास ने मानव मूल्यों पर आधारित समाज की रचना करना अपना प्रमुख ध्येय बनाया और इसी लक्ष्य को प्राप्त करने के मनुष्य को विचार, सिद्धांत एवं कर्म की उच्चता को प्रमुख माना।

---

[37] वही पृष्ठ–12

गुरु घासीदास ने अपने विचारों एवं उपदेषों को लोकभाषा छत्तीसगढ़ी में जन–जन तक पहुँचाया। उन्होंने सम्पूर्ण छत्तीसगढ़ का कई बार भ्रमण किया और जन–जन की समस्याओं से रू–ब–रू हुए और उन समस्याओं का हल अपने विचारों में झुझाया। गुरु घासीदास की वाणियाँ मौखिक परंपरा के रूप में जन–जन में सहेजकर रखी गयी और वह आज भी प्रासंगिक प्रतीत होती हैं।

"गुरु घासीदास के छत्तीसगढ़ भ्रमण में दिये गये उपदेषों को ''रावटी'' कहा जाता है जिनकी संख्या सात है।"[38] वे गिरौधपुरी से सोनार पान होते हुए बस्तर के चिरईपटर, दान्तेवाड़ा, कांकेर, पानाबरस, मोहला, डोंगर गढ़, गंडई, भंवरदाह, कवर्धा, भोरमदेव एवं दलहापोड़ी पहुँचे। इन रावटियों में गुरुजी ने 42 वाणियों के माध्यम से अपने विचारों का प्रचार–प्रसार किया। इन 42 वाणियों में गुरु घासीदास ने तत्कालीन समाज में व्याप्त विषमताओं का खंडन किया और अपने अनुयायियों को सतनाम के पथ पर चलने की सलाह दी।

इन रावटियों में गुरु घासीदास की सामाजिक चेतना एवं सम्पूर्ण दर्षन का निचोड़ झलकता है। इन विचारों को अमर वाणियाँ भी कहा जाता है।[39]

1. मरे के बाद पीतर मनाना हर मौला बैहा कस लागथे।
2. तोर पीरा हर ओत केच अकन आय, जतका मोर आय कोनो जीव ला झन मारबे।
3. पान, परसाद, नरियर, सुपारी चढ़ावन हा ढ़ोग आय।
4. करिया हो के गोरिया हो, ये पार के हो के ओ पार के हो मनखे हर मनखे आय।
5. तोर ला संत रवाही, संत के ला तैहर खाबे, नहीं तो सतनाम ला छोड़ देबे।
6. दान के लैवैया पापी, दान के देवैया पापी।

[38] पूनम सिंह एवं रमेन्द्र नाथ मिश्रा, पंथी गीत एवं राष्ट्रीय चेतना (सं. जे. आर. सोनी) पृष्ठ–156
[39] टी. आर. खुन्टे, सतनाम दर्शन पृष्ठ–227

7. मोर हा तो संत के (तोर) आय, तोर हा मोर बर किया आय।

8. मुरही गाय के दुध ल झन पीवे। अउ भैसं ला नागर झन जोत बे।

9. पढ़ ले, सुन ले, मूंदे केला मूंद ले, जेहर नई मुंदावय तेन ला कहिबे झन।

10. सबो सन्त एक बरोबर। जे ज्ञान दीही ते ज्ञानी जे निन्दा करही ते अभिमानी।

11. मंदिर मस्जिद बनई हर मोर मन नी आय,

तोला बनाए बर हे त तरिया बना, दरिया बना, कुआ बना, धरमषाला बना, अनाथघर बना, दुर्गम ला सरल बना।[40]

सतनामियों का जनसंख्या विस्तार

गुरु घासीदास के संपूर्ण छत्तीसगढ़ में कई दफ़ा भ्रमण के फलस्वरूप पूरे राज्य में सतनाम के अनुयायियों में वृद्धि हुई। छत्तीसगढ़ के उत्तरी और दक्षिणी सीमांत जनपदों को छोड़कर लगभग पूरे छत्तीसगढ़ में सतनामी पाये जाते है। मुख्य रूप से रायपुर, महासमुंद, सारंगढ़, चांपा जांजगीर, राजनांद गाँव, कवर्धा एवं विलासपुर जिलों में सतनामियों की संख्या सर्वाधिक है।

सतनामियों में जातियों का समिश्रण

सतनामी समाज मुख्य रूप से दलित एवं षोषित जातियों का समिश्रण है। इन जातियों में चमारों की संख्या सर्वाधिक[41] थी इसलिए सामान्यतः, सतनामियों की पहचान चमार जाति के एक उपवर्ग के रूप में की जाती थी। यद्यपि चमार जाति के अलावा सतनाम पंथ ने अन्य दलित एवं षोषित जातियों को भी अपनी ओर आकर्षित किया किंतु उनकी संख्या अल्प थीं मौखिक परंपराओं में सतनाम पंथ में विभिन्न जातियों की

[40] टी. आर. खुन्टे, सतनाम दर्शन पृष्ठ–227

[41] Briggs Geo W. Pg. 222-223

भागीदारी का उल्लेख मिलता है। पंथी गीत के माध्यम से सतनाम पंथ का अन्य जातियों पर प्रभाव एवं उन जातियों का सतनाम पंथ में दीक्षित होने का प्रमाण सहज़ मिलता है।

सतनामी के संख्या दिन–दिन बाढ़त जावै भारी.....
गोंड कंवर कोरी पासी चमरा महरा मोची
राउत औ रोहिदास तेली सतानाम लगाइन
अहीर ब्रजवासी मवली बरई अऊ तमोली
राउत गोवारी बंजारा हरबोला अऊ गोधली,
गड़रिया गुण्डेर धुनकर धनका कोडार, लोहार पीड़, जोगीनाथ के
भुंजी भाट चरण सुतिया धोबी अऊ धनवार
ढ़ीमर केवट मांझी कोस्टा कसेर अऊ सोनार,
तुरहा कष्यप निषाद बाथ्म सिगरहा ठोली दामाली हरिदास
डडसेना कलौटा कोलवा तेती अऊ कोटवार
राजगिरी चित्रावर दर्जी सिपी अऊ मरार,
गाँव के गाँव बन गिन सतनामी झाराझार,
हम सब इही म गिनाथन सतनाम पंथ के।[42]

सतनामियों के तीर्थस्थल

सतनामी संप्रदाय ने अपने अस्तित्व एवं स्वतंत्र पहचान के लिये ब्राह्मण धर्म के सामानांतर अपने प्रतीकों एवं तीर्थ स्थलों का निर्माण किया। सतनामी समाज के तीर्थ स्थल मुख्यतः गुरु घासीदास से संबंधित विभिन्न स्थलों से है जहाँ सतनाम पंथ से जुड़ी हुई बड़ी–बड़ी घटनाएँ घटित हुई। प्रमुख तीर्थ स्थलों में गिरोधपुरी, भंड़ारपुरी, तैलासी,

---
[42] टी. आर. खुन्टे, सतनाम दर्शन, पृष्ठ–323

छाता पहाड़ इत्यादि प्रमुख है। वर्तमान काल में गुरु घासीदास के वंषज गिरौधपुरी एवं भण्डारपुरी में निवास करते है इसलिए इन स्थलों को सतनामी तीर्थ स्थलों का केन्द्र माना जाता है।

इन सभी तीर्थ स्थलों पर सतनाम के प्रतीकों की ही पूजा की जाती है इन प्रतीकों में जैतखाम प्रमुख है। सतनामी समाज इन सभी तीर्थ स्थलों से भावनात्मक रूप से जुड़ा हुआ है। धार्मिक उत्सवों जिनमें गुरु घासीदास का जन्म, बालकदास का जन्म आदि विभिन्न अवसरों पर यहाँ मेलों का आयोजन किया जाता है जिनमें छत्तीसगढ़ के दूरस्थ क्षेत्रों से सतनामी भाग लेने आते हैं। सामान्यतः इन मेलों का आयोजन एक–दो पखवाड़े चलता रहता है। इन मेलों में रात–दिन निरंतर पंथी गीत एवं पंथी नृत्यों का आयोजन के साथ धार्मिक क्रियाकलाप भी आयोजित किये जाते है।

इन मेलों मं दूरस्थ क्षेत्रों से आये तीर्थाटन की इच्छा लिये ज्यादातर श्रद्धालु मेले की पूरी अवधि तक यहीं कल्पवास करते हैं और अपनी धार्मिक एवं आध्यात्मिक की इच्छाओं की तृप्ति करते हैं।

मेलों के अलावा वर्ष भर इन तीर्थ स्थलों पर श्रद्धालुओं की आवा–जाही बनी रहती है जिसका मुख्य कारण सतनामियों का अपनी स्वतंत्र पहचान एवं धार्मिक संवेदनाओं की पूर्ति करना है।

अध्याय– 2

पंथी नृत्य के विविध आयाम

पंथी गीत और नृत्य गुरु बाबा घासीदास के जीवन चरित, उपलब्धियाँ और मानव समाज के प्रति उनके करूणा, सह्दयता और उनके समता मूलक दर्षन को चरितार्थ करने का सषक्त कलात्मक माध्यम है। "मन न रंगाये, रंगाये जोगी कपड़ा" की उक्ति के विपरीत यह विधा मानव जीवन को बाहरी आंडबर के बदले मन को रंगाने की अहमियत देता है"[1] इसलिए पंथी नृत्य से जुड़े सतनामी समाज इस नृत्य की तर्ज पर अपने आपको सात्विक, समता बहुल एवं षोषण विमुक्त समाज के लिए प्रेरित करता है जिसके द्वारा बाबा घासीदास के परिभाषित आदर्ष समाज को एक अमली जामा पहनाया जा सके। वस्तुतः पंथी नृत्य एक अनोखी एवं सषक्त सामाजिक अभिव्यक्ति का वाहक है जिसने अपने तत्कालीन सामाजिक विषमताओं, धार्मिक आंडबर, हिंसा, छुआ–छूत एवं ऊँच–नीच का विरोध की एक सषक्त एवं बौद्विक विचार–धारा का सूत्र पात किया। इसी धारा ने आगे चलकर षोषण विहीन समाज की उक्ति "वसुधैव कुटुम्बकम" को चरितार्थ करते हुए मध्य भारत में एक "सांस्कृतिक पुर्नजागरण" के बीज बोंए।"[2] पंथी नृत्य और पंथी गीत का सूत्रपात्र भक्ति आंदोलन परंपरा में एक अभिन्न घटना होकर अपने समसामयिक काल में उत्पन्न विभिन्न क्षेत्रीय निम्न जातिय, धार्मिक एवं सांस्कृतिक आंदोलनों से मेल खाती है। अखिल भारतीय भक्ति आंदोलन में सैदव लोक कला जिनमें लोक संगीत एवं लोक नृत्य षामिल है, का प्रयोग भक्ति तत्वों को जन–जन तक पहुँचाने के लिये किया गया। भक्ति आंदोलन के निर्गुणी संतों ने मार्गीय एवं लोक कला के बीच

---

[1] परदेशी राम वर्मा, पंथी गीत एवं राष्ट्रीय चेतना (सं. जे. आर. सोनी) पृष्ठ–56

[2] हरी ठाकुर, छतीशगढ़ की महान विभूतियाँ, पृष्ठ–2

की कलाओं का निर्माण किया। भक्ति आंदोलन ने अखिल भारतीय स्तर पर लगभग समान रूप से नये कलात्मक उपादानों का सृजन किया। उदाहरण स्वरूप जहाँ एक ओर उत्तर भारत में कबीर पंथ ने "चौका गीत" को कबीर भक्ति के प्रचार–प्रसार का साधन बनाया[4]। कबीर की तर्ज पर ही रैदास, दादू, नानक, मीरा आदि भक्ति संतों ने कीर्तन (एक संगीत विधा) के द्वारा अपनी षिक्षाओं को जन–जन तक पहुँचाने का कार्य किया। पूर्वी, मध्य, पष्चिमी एवं दक्षिणी भारत भी इससे अछूता न रहा। पूर्वी भारत में चैतन्य एवं सुन्दर दास ने भक्ति लोक संगीत एवं लोक नृत्य का सृजन किया। इसी सृजनात्मकता की छाप भक्ति आंदोलन के उत्तरवर्ती काल में मध्य भारत में जन्में "सतनामी आंदोलन" में दिखाई देती है। वस्तुतः सतनामी आंदोलन में सृजित पंथी गीत एवं पंथी नृत्य अपने समसामायिक भक्ति आंदोलन में सृजित लोक संगीत एवं लोक नृत्य परंपराओं का ऋणी है। जिन्होंने न केवल कलात्मक रूप से पंथी नृत्य को संवारा बल्कि उसके दार्षनिक एवं आध्यात्मिक तत्वों को एक नया सौंदर्यबोधक आधार प्रदान किया।

पंथी नृत्य ऐतिहासिकता

पंथी नृत्य का उद्‌गम "पंथ" अर्थात सतनाम पंथ से अन्तर्निहित होना पाया जाता है। पंथ के अनुयायियों पंथीयों का यह वस्तुतः नृत्य है जिसके द्वारा वे अपने गुरु घासी दास की महिमा का गुणगान कर अपने सामाजिक, धार्मिक एवं आध्यात्मिक पहलुओं की पूर्ति करते हैं। पंथी नृत्य सतनामी समाज के रीति–रिवाज एवं धार्मिक जीवन का वस्तुतः एक प्राथमिक अंग है जो न केवल उनकी इस भारतीय सामाजिक व्यवस्था में एक स्वतंत्र पहचान बनाता है बल्कि उन्हें एक अनूठी सांस्कृतिक अभिव्यक्ति भी प्रदान करता है। छत्तीसगढ़ी लेखक मोतीलाल भास्कर के अनुसार, "पंथी से तात्पर्य बटोही या राहगीर से है। सतनाम पंथ के अनुयायी यह मानते है कि सत्य पथ के पथिक जीवन और जगत

के अनुराग से भीगकर असीम आनंद की अनुभूति में डूबकर नाचते–गाते उस ओर जा रहे है जहाँ मार्ग, मंजिल, सच्चाई और वास्तविक जीवन है।"[3]

पंथी नृत्य के उद्गम एंव इसके विकास के ऐतिहासिक यात्रा के परिपेक्ष्य में विभिन्न मौखिक मत है जो कभी–कभी एक–दूसरे के विपरीतार्थक तथ्यों को उजागर करते है। जिसके फलस्वरूप एक भ्रांति की स्थित उत्पन हो जाती है यद्यपि यह भ्रांति अपने आपमें विषिष्ट लक्षणों को समाहित किए हुए है जिसकी परते खोलते–खोलते अंततः पंथी नृत्य के अतीत को बारीकी से देखा एवं समझा जा सकता है। सतनामी बुजुर्ग चिन्ता रामजी के अनुसार "पंथी गीत से लेकर पंथी नृत्य के सषक्त विधा में परिवर्तित होने का एक लंबा इतिहास है। पंथी नृत्य अपने पूर्व में सतनामी समाज में लोकप्रिय पंथी गीत का परिष्कृत रूप है जिसे पिछले पचास वर्षों में विभिन्न षारीरिक मुद्राओं एवं अभिव्यक्तियों द्वारा नृत्य के रूप में परिवर्तित कर दिया गया। इस पूरी प्रक्रिया में पंथी गीतों की वास्तुनिष्ठ स्थिति को गौण कर दिया तथा उन्हें पंथी नृत्य की सहायक बनाकर जोड़ दिया गया। जिसके फलस्वरूप पंथी एक नृत्य प्रधान विधा के रूप में अस्तित्व में आया।"[4] एक अन्य पंथी नृतक सूरज प्रकाश ने बताया कि "गुरु घासीदास ने स्वयं सतनाम के संदेष को जन–जन तक पहुँचाने के लिये लोक कलाओं (जिनमें लोक गीत एवं लोक नृत्य) को अपना माध्यम बनाया। उन्हीं के प्रयासों से पंथी गीत एवं पंथी नृत्य की उत्पत्ति हुई। पंथी गीत को अपने विचारों की सषक्त अभिव्यक्ति प्रदान कर उन्होंने सतनाम की शिक्षाओं को संपूर्ण छत्तीशगढ़ में फैलाया। उनके काल में यह प्रक्रिया अत्यन्त धीमी रही लेकिन गुरु घासीदास के परवर्ती गुरुओं, संतो एवं गुरु पुत्रों ने घासीदास के उपदेषों एवं विचारों को स्मृति में बनाये रखने हेतु पंथी गीतों की संरचना

[3] मोती लाल भास्कर, मड़ई लोक के रेखांकन का विनम्र प्रयास सं. काली चरण यादव, पृष्ठ–179
[4] सतनामी बुजुर्ग चिन्ता राम जी से निजी साक्षात्कार सिलियारी गाँव (जिला रायपुर) के 15 दिसम्बर 2007

में एक विषिष्ट परिवर्तन कर पंथी गीतों की व्याकरण एवं विषय वस्तु पर विषेष ध्यान दिया गया। जिसे इसका स्वरूप मुखर, सरल और सषक्त हो गया और अंततः यही पंथी गीत पंथी नृत्य की सषक्त लोक विधा के रूप में रूपांतरित हो गये।"[5]

एक सतनामी समाज सेवक वीरेन्द्र ढ़ीढ़ी पंथी नृत्य के उदगम एवं विकास पर दूसरे दृष्टिकोण से प्रकाश डालते हुए बताते है कि "बीसवीं सदी के पूर्वाध तक आते–आते छत्तीसगढ़ में सतनामी समाज की मौलिकता, उनके विषिष्ट सांस्कृतिक, धार्मिक एवं आध्यात्मिक धरोहर लगभग समाप्ति की ओर बढ़ रही थी। जन मानस में गुरु घासीदास के उपदेष एवं उनकी छवि लोक मानस से विस्मृत हो गई और वे अपनी परंपराओं को लगभग भुला चुके थे और ब्राह्मणवादी धार्मिक व्यवस्था में षामिल हो रहे थे।

बीसवीं सदी के दूसरे एवं तीसरे दषक में छत्तीसगढ़ में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ एवं हिंदू महासभा के द्वारा चलाये जा रहे हिन्दु सुधारवादी एवं जातिय षुद्धीकरण अभियान के प्रतिक्रिया स्वरूप छत्तीसगढ़ में दलित आंदोलन का सूत्रपात हुआ। यह वह समय था जब दलितों के अग्रणी नेता डा॰ भीमराव अंबेडकर भारतीय राजनीति में दलितों के प्रतिनिधि के रूप में उभर चुके थे। दलितों की सामाजिक स्थिति, जातिगत–षोषण और हिंदू समाज में व्याप्त विषमताओं के प्रति उन्होंने एक बड़ा आंदोलन खड़ा किया। बीसवीं सदी के तीसरे दषक में नागपुर दलित राजनीति के केन्द्र के रूप में उभर कर आया। नागपुर से अत्यंत समीप होने के कारण अथवा यूं कहें कि छत्तीसगढ़ में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ एवं हिंदू महासभा द्वारा चलाये जा रहे दलित षुद्धिकरण को एक चुनौती देने के लिये अछूतों को सामाजिक एवं राजनैतिक स्तर पर समप्रभुत्व बनाने के लिए डा॰ अंबेडकर के विचारों को छत्तीसगढ़ में प्रचारित किया गया और हिंदू आंदोलनों के

[5] पंथी कलाकार सूरज प्रकाश निजी साक्षात्कार में, आमापारा रायपुर, 18 दिसम्बर 2007

सामानांतर ही दलित आंदोलन के स्वतंत्र प्रारूप का प्रचार–प्रसार किया गया। जिसने कालांतर में छत्तीसगढ़ में सषक्त दलित चेतना का निर्माण किया। छत्तीसगढ़ में दलित आंदोलन के प्रचार–प्रसार का श्रेय नकुल दादा ढ़ीढ़ी (1912–75 ई॰) को जाता है।

छत्तीसगढ़ में दलित आंदोलन के पहले चरण में मुख्य पहल के रूप में सतनामी समाज की विलुप्त एवं मरणासन्न परंपराओं, रीति–रिवाजों, इतिहास, दर्षन एवं मौखिक सामाजिक सांस्कृतिक परंपराओं को पुर्ननिर्माण करके उनका प्रयोग सतनामी समाज को एक सूत्र में पिरोने एवं सामाजिक एवं राजनैतिक संघर्ष के लिए तैयार करना था। सांस्कृतिक परंपराओं के परिपेक्ष्य में पंथी नृत्य एवं पंथी गीत का इसी दौर पुनर्निर्माण एवं पुर्नसंयोजन किया गया। पंथी नृत्य एवं पंथी गीत की सहायता से सतनामी समाज में राजनैतिक–चेतना का प्रचार किया गया। वस्तुतः विभिन्न धड़ों में बिखरे सतनामियों को एक मंच पर खड़ा करने के लिए नकुल दादा ढ़ीढ़ी ने सर्वप्रथम 1938 ई॰ में राज्य स्तर पर गुरु घासी जयन्ती के आयोजन का प्रारंभ किया। यह आयोजन पूर्ण रूप से राजनैतिक था जिसने सतनामी समाज को षोषण एवं सामाजिक विषमता के विरूद्ध संघर्ष करने के लिए तैयार किया। जिससे उसे समकालीन समाज में स्वतंत्र अस्तित्व एवं अभिव्यक्ति मिल सके।

अपनी बात को आगे बढ़ाते हुए उन्होने बताया कि नकुल दादा ढ़ीढ़ी ने सतनामी समाज की सामाजिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक विरासत को अधिक महत्व दिया। नकुल दादा ढ़ीढ़ी की समझ मे सतनामी समाज अपनी मौखिक परंपरा तथा उनके अंकन, वाचन एवं मंचन में सदैव अग्रणी रहा है। नकुल दादा ढ़ीढ़ी के प्रयास से समसामायिक छत्तीसगढ़ी दलित कलाओं लोक कलाओं के समिश्रण से पंथी नृत्य की रचना की। पंथी नृत्य के वर्त्तमान कलात्मक विन्यास में छत्तीसगढ़ के अहीरों के राउत नाचा के साथ–साथ गोंड जनजाति के गणगौड़ जैसे नृत्यों में प्रयुक्त हस्तों एवं पैरों की गतियाँ

एवं विभिन्न षारीरिक करतबों की झलक पंथी नृत्य में देखने को मिलती है। इन सभी दलित कलाओं का समिश्रण कर सतनामी समाज को एक नवनिर्मित विधा से जोड़ना एक बहुत बड़ी चुनौती का काम था। किंतु नकुल दादा के प्रयास से यह संभव हो पाया और अंततः सतनामी समाज को एक स्वतंत्र सांस्कृतिक अभिव्यक्ति मिली।"[6]

वर्तमान समय में पंथी नृत्य का आयोजन सतनामी समाज से जुड़े हुए विभिन्न सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक एवं मांगलिक अवसरों पर किया जाता है। सामान्य तौर पर पंथी नृत्य का मंचन गुरु घासी दास जयंती अर्थात माघी पूर्णिमा (18 दिसम्बर) के अवसर पर छत्तीसगढ़ के विभिन्न षहरी एवं ग्रामीण अंचलों में होता है। प्रमुख रूप से गुरु घासीदास एवं उनके उत्तरवर्ती सतनाम पंथी गुरुओं के जीवन वृत्त से जुड़े हुए विभिन्न स्थलों यथा भंडापुरी, गिरोधपुरी तैलासी एवं छाता पहाड़ में पंथी नृत्य का आयोजन वृहत एवं भव्य रूप में किया जाता है। धार्मिक अवसरों के अतिरिक्त विभिन्न सामाजिक, मांगलिक अवसरों एवं सांस्कृतिक कार्यक्रमों में पंथी नृत्य प्रस्तुतियों वर्ष भर देखा जा सकता है। मांगलिक कार्यों के सामानांतर सतनामी समाज में मृत्यु के अवसरों पर पंथी नृत्य के स्थान पर पंथी गीतों का प्रचलन है। सतनामी परंपरा के अनुसार मृत्यु जीवन की परिणति अथवा अंतिम षास्वत लक्ष्य है। मनुष्य की मृत्यु के पष्चात उसके आने वाले जन्म को अधिक सुखमय बनाने की कामना एवं प्राणी के संसार से विदा होने की खुषी को एक सामाजिक सौहार्दता के रूप में मनाने की परंपरा हैं। ऐसे पंथी गीतों की प्रस्तुतियों में सुर और लय अत्यन्त विरल रखी जाती है। ऐसी प्रस्तुति प्रायः कबीर पंथ के चौका गीत से मेल खाती है। चौका गीत पुरुष प्रायः एक समुदाय में बैठकर ढ़ोलक, मजीरे एवं खरताल की सहायता से चौका गीत गाते है। इन चौका गीतों में प्रमुखतया जीवन एवं मृत्यु के गूढ़ रहस्यों को रेखांकित करने वाले पद, दोहा एवं साखी

[6] बिरेन्द्र ढ़ीढ़ी से निजी साक्षात्कार, रायपुर, 18 दिसम्बर 2007

के गायन पर अधिक बल दिया जाता है। चौका गीत मंडली के प्रस्तुति में चारों ओर बैठे दर्षक भी धार्मिक एवं आध्यात्मिक भावना से ओत–प्रोत होकर उस प्रस्तुति का एक महत्वपूर्ण अंग बन जाते है। ऐसी प्रस्तुतियो में सामान्यतः यह देखा जाता है कि इनकी अभिव्यक्तियाँ किसी विषेष गीत मंडली की न होकर एक सामूहिक जन की अभिव्यक्ति बन जाती है। छत्तीसगढ़ में मृत्यु के अवसर पर गाये जाने वाले पंथी गीत उत्तर भारतीय चौका गीतों से साम्यता रखते हैं।

कबीर पंथी चौका गीत के अनुसार

कौन मरै कौन जनमै आई
सरग–नरक कौनें गति पाई।। टेक।।
पंचतत अविगति थै उतपना, एकै किया निवासा।
बिछुरै तत् फिरि सहजि समांनै, रेख रेही नहीं आसा
जल में कुंभ कुंभ में जल है, बाहरि भीतरि पानी।
फूटा कुंभ जल जलहि समाना, यहु तत कथौ गियानी।।
आदै गगना अंतै गगना, मधे गगना भाई।
कहै कबीर करम किस लागै, झूठी संक उपाई।।[7]

छत्तीसगढ़ के पंथी गीत के अनुसार

ए माटी के काया, ये माटी के चोला .....
के दिन रहीबे, बता दे मोला .....
ए तन हावे तोर माटी के खिलौना हो .....
माटी के ओढ़ना हो माटी के बिछौना हो .....
ये माटी काया छोड़ जाही तोला। के दिन .....

[7] पुरुषोतम अग्रवाल, कबीर साखी और सबद पृष्ठ, 74

माटी के खिलौना बाबा सुंदर बनाये हो .....
टूटे–फूटे में कछु काम नई तो आए हो .....
तरसथे चोला, ज्ञान दे दे भोला। के दि .....
आये हस अकेला हंसा, जाबै तैं अकेला हो .....
यह दुनिया हवे माया कर मेला हो .....[8]

(ये मिट्टी की काया है और मिट्टी का चोला है। ऐ मनुष्य बता कि तू कब तक रहेगा। ये तन तेरा मिट्टी का खिलौना है माटी का ओढ़ना है और माटी का बिछौना हैं ये आत्मा इस मिट्टी की काया को छोड़कर चली जाएगी। इस मिट्टी के खिलौना को बाबा जी ने सुंदर बनाया है। ईर्ष्या, द्वेष में कुछ नहीं मिलेगा। इस आसानी तन को ऐ ईष्वर ज्ञान दे दें। हंस रूपी प्राणी हँस कर आता है अकेला ही जाता है। यह दुनिया माया का मेला है।)

पंथी नृत्य : प्रचलित रीति–रिवाज

"सतनामी परंपरा में "जय स्तम्भ" अथवा जैतखाम का विषिष्ट महत्त्व है"[9]। वस्तुतः यह स्तम्भ गुरु घासीदास के सतनाम पंथ की ब्राह्मणवादी धर्म पर विजय को सांकेतिक रूप में अभिव्यक्त करता है। यह जैतखाम सतनामी समाज के सार्वजनिक स्थलों से जुड़े हुए विभिन्न स्थानों पर स्थापित किया जाता है। सतनामी समाज के मुहल्लों में चाहे वे गाँव में हो अथवा षहर में वस्तुतः उनके जीवन से जैतखाम जुड़ा हुआ है। वस्तुतः जैतखाम छत्तीसगढ़ में सतनामी समाज की पहचान एवं उनकी उपस्थिति को व्यक्त करता है। जैतखाम के इर्द–गिर्द ही सतनामी समाज के धार्मिक, सामाजिक रीति–रिवाज एवं विष्वास जुड़े हुएँ है। भौतिक निर्माण की दृष्टि से यह स्तम्भ छत्तीसगढ़

[8] परदेशी राम वर्मा, पंथी गीत और राष्ट्रीय चेतना पृष्ठ–67
[9] जे. आर. सोनी, पंथी गीत और राष्ट्रीय चेतना, पृष्ठ–2

में पाई जाने वाली विषेष प्रकार की लकड़ी सरई अथवा साल वृक्ष का बनाया जाता है। इस लकड़ी के पीछे मान्यता है कि लकड़ी वर्षों तक सड़ती नहीं है और इसकी उम्र भी लंबी होती है। सतनामियों की मान्यता है कि इस विषेष प्रकार सीधी लकड़ी का जैतखाम में प्रयोग उनकी सामाजिक स्थिति को एक अलग स्थान प्रदान करती है। एकाष्म एवं सीधा लठ्ठा उनके लिये उनके लिए उत्तरोत्तर वृद्धि एवं प्रगति का भी द्योतक है। इस जैतखाम के ऊपर तीन खूंटियाँ सत्य, अहिंसा और षील को सांकेतिक रूप से अभिव्यक्त करती है।[10] इन्हीं तीन खूंटियों में पिरोकर सफेद पताका स्तम्भ में फहराई जाती है खंभे के षीर्ष को एक लोहे के टोप द्वारा ढ़क दिया जाता है जिससे बरसात का पानी जैतखाम को नुकसान न पहुँचा सके। इस खंभे पर लगी पताका को प्रति दो वर्ष अथवा प्रतिवर्ष बदला जाता है।

जैतखाम की सफेद ध्वजा सत्य एवं सात्विकता का प्रतीक है। ध्वजा चढ़ाने के पष्चात गुरु घासीदास की वंदना होती है। यह संपूर्ण स्तम्भ गुरु घासीदास जी की षाष्वत उपस्थिति एवं उनके संदेष तथा षिक्षाओं को लौकिक जीवन में अभिव्यक्त करता है। खैतखाम की पूजा, अर्चना का क्रम स्तम्भ के सम्मुख दीप जलाकर, फूल–माला पहनाकर, नारियल को सफेद कपड़े में बाँधकर स्थापित कर तथा मिष्ठान के चढ़ावे से प्रारंभ होता है। इस पूजा में सतनामी पुरुषों के साथ–साथ महिलाओं की एक महत्वपूर्ण भूमिका होती है। प्रायः इस पूरे संस्कार एवं रीति–रिवाज में सतनामी समुदाय का धर्मगुरु, बुर्जुग एवं विद्वान व्यक्ति इस संस्कार को निभाता है, जैसे–जैसे संस्कार पूरा होता है वहाँ पर उपस्थिति जन–समूह "सतनाम की जय" – "सतनाम की जय" की ध्वनि से उद्‌घोष करता है। आज के दौर में कहीं–कहीं स्तम्भ के पार्ष्व में गुरु घासीदास के चित्र की स्थापना भी देखी जाती है। सामान्यतः सतनामी परंपराओं में किसी व्यक्ति

[10] जे. आर. सोनी, पंथी गीत और राष्ट्रीय चेतना, पृष्ठ–20

अथवा महापुरुष के चित्र की पूजा का पूर्ण रूप से निषिद्धिकरण है। क्योंकि ऐसा माना जाता है कि गुरु घासी दास का सम्पूर्ण जीवन उनकी षिक्षायें, उपदेष और चमत्कार वस्तुतः एक स्तम्भ के भीतर ही एक सांकेतिक एवं षास्वत रूप में परिभाषित हो जाते हैं। इस निर्गुण अभिव्यक्ति ने धार्मिक एवं सांस्कृतिक रूप से सतनामी समाज को एक लंबे समय तक उनकी स्वतंत्र एवं प्राथमिक पहचान मुहैया करवाई। किंतु 1940 ई० और 1950 ई० के दषक में स्वतंत्रता आंदोलन एवं छत्तीसगढ़ में दलित आंदोलन ने सतनामी समाज को उनके मिथक, मूल्यों, रीति–रिवाजों एवं मौखिक परंपरा को पुनर्नियोजित कर समाज के मुख्य धारा में अपनी उपस्थिति दर्ज करने का मौका दिया। फलस्वरूप इस प्रयोग धर्मी प्रक्रिया के प्रभाव से सतनामी समाज ने सीधे तौर पर गुरु घासीदास के चित्र, मिथक एवं उनके जीवन से जुड़ी हुई घटनाओं को चित्रात्मक संकेतों से पूजना आरंभ कर दिया। समाजसेवी विजय राज बताते हैं– गुरु घासी दास के चित्र की प्रेरणा समकालीन छत्तीसगढ़ में लोकप्रिय रैदास पंथ एवं कबीर पंथ से ली गई। गुरु घासी दास की मुद्रायें, उनका षारीरिक तेज तथा मस्तिष्क की आभा संत रैदास एवं संत कबीर से काफी हद तक साम्यता रखती है।"[11]

पंथी गीतों में जैतखाम की स्थापना का एक विस्तृत वर्णन मिलता है। जैतखाम की सतनामी समाज में प्रासंगिकता तथा इसके गुरु घासी दास के संबंधों को केन्द्र बिन्दु बनाकर जन–जन द्वारा विभिन्न पंथी गीत बनाए गये। सतनामी परंपराओं के अत्यन्त सहज होने के कारण जैतखाम की स्थूल एवं सांकेतिक दोनों ही रूप में पूजा–अर्चना मान्य है। प्रायः धार्मिक स्थलों एवं सार्वजनिक स्थलों पर स्थापित जैतखाम के साथ–साथ अलावा मंचों पर स्थापित सांकेतिक जैतखाम की पूजा–अर्चना की अलग–अलग विधियाँ प्रचलित हैं। धार्मिक स्थलों में सतनामी समाज से जुड़े हुए गुरुद्वारों तीर्थ स्थानों जिसमें

[11] विजय राज से निजी साक्षात्कार में रायपुर, 10 सितम्बर 2007

गिरोधपुरी, भंडारपुरी, छाता पहाड़, तैलासी आदि स्थलों पर भव्य जैतखामों की स्थापना की गई है। तीर्थ स्थानों के सामानांतर ही छत्तीसगढ़ में फैले सतनामी आबादी क्षेत्रों के सार्वजनिक एवं सामुदायिक स्थलों पर जैतखामों की उपस्थिति को सहज ही देखा जा सकता है। मंचीय स्थानों जैतखाम की सांकेतिक उपस्थिति पारिवारिक, धार्मिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक क्रिया कलापों का प्रतिनिधित्व करती है। ये सम्मेलन प्रायः वर्ष भर विभिन्न राजनैतिक एवं धार्मिक अवसरों पर आयोजित किये जाते रहते हैं। इन सम्मेलनों की विषिष्टता यह है कि इन सम्मेलनों में केवल सतनामियों की ही भागीदारी होती है । इन सम्मेलनों का मुख्य उद्देष्य सतनामी समाज की स्वतंत्र पहचान एवं गुरु घासीदास की षिक्षाओं को बनाए रखकर जन–जन तक पहुँचाना है जिससे सतनामियों के मध्य सतनाम की ज्योति को अखंड रखकर उनमें मानवीय एवं आधात्मिक मूल्यों को बरकरार बनाए रखना है। धार्मिक एवं सार्वजनिक स्थलों पर जैतखाम जमीन में गड़ा हुआ एक विषिष्ट स्तम्भ होता है, जिसमें सफेद पताका लगी होती है। वहीं मंच पर जैतखाम की अभिव्यक्ति उस पर सामान्यतः मिट्टी के छोटे छड़े अथवा लोटे को सफेद रंग से रंगकर तथा धार्मिक चिह्न बनाकर उसमें एक छोटी ष्वेत पताका लगा देते हैं। भार में हल्का होने के कारण इसे मंच पर आसानी से सुविधानुसार कहीं भी स्थापित किया जा सकता है। जैतखाम के बड़े रूप के समान ही यह सांकेतिक जैतखाम गुरु घासीदास की अभिव्यक्ति प्रदान करता है। सामान्यतः सांकेतिक जैतखाम का प्रयोग मंच पर पंथी नृत्य के आयोजन के समय तथा सतनामी समाज के घरों में पूजा–अर्चना एवं रीति–रिवाज के निर्वाहन के समय होता है। मिट्टी के इस लोटे अथवा घड़े के ऊपर नारियल को सफेद कपड़े में बाँधकर अथवा सफेद रंग में रंगकर रखते है। यह सभी सांकेतिक विधियाँ सतनामी समाज में प्रचलित पूजा विधियों में लचीलेपन को प्रदर्षित करती है।

सतनामी लेखक जे॰ आर॰ सोनी के मतानुसार "पंथी नृत्य एवं गीत *सत की जय* का गीत एवं नृत्य है। ज़हाँ सत है वही जय है, जहाँ जय है वहाँ सत है। इसलिये इसके आयोजन के पूर्व जय स्तम्भ जिसे हम जैतखाम कहते हैं, की पूजा का विधान है।"[12] जैतखाम की पूजा विधियों एवं इसकी महिमा पर केन्द्रित छत्तीसगढ़ के ग्रामीण अंचलों में विभिन्न पंथी गीत प्रचलित है। इन्हीं गीतों में से एक के अनुसार–

सुंदर गोबर म अंगना लिपाये हे,
जेकर ऊपर चौका चंदन पुराये हे,
बाबा हो घासी दास ....
कंचन के थारी, धी के आरती सजाये है,
नरियर–सुपारी, लौंग–लायची मंगाये हे,
बाबा हो घासीदास ....
जइसे खंभा, गाँव–गाँव लहराये है,
तइसे ये दिल म, सतनाम उपजाये है,
बाबा हो घासी दास ....

सब पबित्तर एही खंभा ल गड़ाये है,
बिना रंग–छल क ध्वजा फहराये है,
बाबा हो घासी दास ....[13]

(अच्छे गोबर से आँगन लीपा, गया, जिसके ऊपर चंदन से चौका बनाया गया है, हीरे की थाली है और उसमें धी की आरती (दीया) है। नारियल–सुपारी, लौंग इलायची उसमें रखा है। जिस तरह से जैतखाम (स्तम्भ) गाँव–गाँव में लहराता है, उसी के प्रभाव स्वरूप

---

[12] जे. आर. सोनी, पंथी गीत और राष्ट्रीय चेतना, पृष्ठ–19
[13] वही पृष्ठ–2

ह्रदय में सतनाम की अनुभूति होती है। सभी पवित्र प्राणी इस स्तम्भ को गड़वाते हैं। बिना छल, कपट से उसकी ध्वजा आकाष में फहरा रही है।)

जैतखाम की पूजा–अर्चना के तत्पष्चात पंथी नृत्य का प्रस्तुतिकरण इस स्तम्भ के समीप ही किया जाता है। सतनामी साहित्यकार शंकर लाल टोडर के अनुसार "पूर्व काल में पंथी के कलाकार एक समूह में बैठकर पंथी गीत गाते थे और उसकी षैली मुख्यतः गायन की षैली थी, जिसमें मुख्य रूप से निर्गुण भजन होते थे। कालांतर में नृत्य के तत्वों के आने से पंथी गीत की परिणति पंथी नृत्य के रूप में हो गई।"[14] वस्तुतः पंथी गीत एवं पंथी नृत्य एक दूसरे के पूरक है, जिन्हें एक–दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता है। सामान्य तौर पर पंथी गीतों को नृत्य के माध्यम से एक गति प्रदान की जाती है। नृत्य की षारीरिक मुद्राओं के माध्यम से धार्मिक एवं अध्यात्मिक अभिव्यक्तियों का संप्रेषण गीतों की अपेक्षा आसान है। इसलिए नृत्य प्रस्तुति में दर्षक गीत की अपेक्षा अधिक उत्साहित होते हैं उन विभिन्न षारीरिक मुद्राओं के द्वारा बाबा घासी दास की उपस्थिति एवं उनकी षिक्षाओं को सांकेतिक रूप में रूपांतरित कर सीधे दर्षकों की भावनाओं में उतारा जाता है। इस प्रक्रिया में नृत्य के द्वारा कलाकारों एवं दर्षकों के मध्य बना सीधा संपर्क इस नृत्य के आयोजन की अपनी अलग विषिष्टता है, जिसमें कलाकार एवं दर्षक एक ही विधि से समान रूप में अपनी सामाजिक, अध्यात्मिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक अभिव्यक्तियों की पूर्ति करते हैं। वस्तुतः पंथी नृत्य का यह आयोजन दर्षकों एवं कलाकारों के मध्य बनी दीवार को तोड़ उनकी संवेदनाओं एवं भावनाओं सम्मिश्रित कर देता है, क्योंकि दर्षक एवं कलाकारों दोनों के सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक एवं आध्यात्मिक सरोकार एक से ही है।

[14] शंकर लाल टोडर से निजी साक्षात्कार

पंथी नृत्य के सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक पक्ष

पंथी नृत्य की विषयवस्तु "गुरु घासी दास के चिंतन, उपदेष तथा आडंबर, ऊँच–नीच, जाति–पाति, वर्णाश्रम व्यवस्था तथा जातिगत षोषण के विरूद्ध उठाई गई उनकी आवाज पर केन्द्रित है।"[15] पंथी नृत्य में प्रयुक्त पंथी गीतों की परंपरा विलक्षणता एवं सामाजिक, साामायिक एवं राजनैतिक परिस्थितियों का सहज ही अवलोकन किया जा सकता है। गुरु घासीदास के समकालीन समाज से लेकर वर्तमान समय की परिस्थितियों को पंथी प्रस्तुतियों ने अपने आप में सहज ढ़ंग से आत्मसात किया है। जे॰ आर॰ सोनी के अनुसार "पंथी गीत जन–जन द्वार सृजित गीत है। अपनी सांसारिक, अध्‍यात्मिक, धार्मिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक आवष्यकताओं के अनुसार इनका सृजन होता रहा है।" जिसके फलस्वरूप पंथी परंपरा की लंबी कड़ी में एक परिवर्तनकारी रेखा देखी जा सकती है। वस्तुतः सतनामी समाज ने अपने समकालीन समाज में जो भी अनुभव अथवा प्रेरणा प्राप्त की उसकी छाप तत्कालीन पंथी विधा पर पड़ी।

सम्पूर्ण उन्नीसवीं सदी में छत्तीसगढ़ में सतनाम पंथ के प्रचार–प्रसार में पंथी गीत एवं नृत्य ने एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। गुरु घासी दास जी की बताई गई षिक्षाओं एवं उपदेषों जनमानस की स्मृति में जीवंत बनाए रखने हेतु सतनामी समाज के संत, महंत, एवं समाज सेवकों ने पंथी टोलियाँ बनाकर पंथी गीत एवं नृत्य के द्वारा जन–जन तक पहुँचाया। प्रारंभ में पंथी नृत्य एवं गीत संत गुरु घासी दास के जीवन चरित्र, चमत्कार, मूर्ति पूजन विरोध, जाति–गत षोषण का विरोध, वर्णाश्रम व्यवस्था का विरोध किया, आडंबरों का विरोध, पषुबलि का विरोध, मांस–भक्षण का विरोध एवं उनके उपदेषों का गुणगान किया जाता था।

---

[15] राम दास शर्मा, छतीसगढ़ में साहित्यिक चेतना का विकास और उसके विविध आयाम, पृष्ठ 36–37

पंथी नृत्य ने अपने प्रारंभ से लेकर वर्तमान समय तक अपने आश्रित समाज को एक निरंतर सांस्कृतिक पृष्ठभूमि दी है। अपने प्राथमिक लक्ष्य अर्थात् सामाजिक विद्रोह की भावना के साथ–साथ भक्ति, समर्पण, दया, करूणा, प्रेम, अहिंसा इत्यादि को अपने में आत्मसात किया। इन्हीं विषिष्टताओं के कारण पंथी नृत्य की प्रकृति एवं वास्तु षिल्प का निम्न वर्गीकरण हो सकता है।

1. गुरु वंदना
2. गुरु घासी दास एवं उनके परिवार के संबंध में वंदना गीत, इसमें गुरु घासी दास एवं उनके पुत्र बालक दास के चमत्कारों की चर्चा की गई है।
3. माता–सफुरा[1] पर केन्द्रित गीत माता सफुरा को सतनामी समाज में दया एवं करुणा की मूर्ति माना जाता है।
4. गुरु घासी दास के उपदेषों एवं उनके जीवन की घटनाओं पर केन्द्रित गीत।
5. सतनामी समाज से जुड़े हुए विभिन्न तीर्थ स्थल, उनके महत्व एवं प्रासंगिकता से संबद्व गीत।
6. सतनाम की महिमा एवं काया खंडी भावी गीत
7. अन्य सतनामी महापुरुषों एवं संतों पर रचित गीत।
8. सामाजिक कुरितियों, आंडबरों एवं सामाजिक षोषण के विरूद्ध गीत।[16]

प्राथमिक रूप में पंथी नृत्य एवं गीत की रचना का उद्देष्य समसामयिक काल के षोषणकारी सामाजिक ढ़ाँचे एवं उसके अनुषंगी धार्मिक विष्वासी रीति–रिवाजों से जुड़े हुए सभी कारकों को विरोध करना था। इस विरोध की षुरुआत जैतखाम की स्थापना एवं उसके इर्द–र्गिद होने वाली पंथी नृत्य की प्रस्तुति से हुई। इन्हीं दो वस्तुओं को

[16] परदेशी राम वर्मा, पंथी गीत और राष्ट्रीय चेतना (सं. जे. आर. सोनी) पृष्ठ–61

आधार बनाकर गुरु घासी दास ने हिंदू समाज का विरोध किया। गुरु घासी दास की विद्रोह की चेतना पंथी नृत्य एवं गीत पर दिखाई देती है।

1. मूर्ति पूजा मत करो

मंदिरवा का करे जइबो

अपने घर ही के देवता मनइबो।

पथरा के देवता हालय नहीं डोलय हो,

हालय नहीं डोलय

अपन घट ही के

देव ला मनइबो, मंदिरवा[17] ....

(मंदिर में क्या करने जाओगे। अपने षरीर के देवता को ही पूजा करो। पत्थर के देवता न हिलते है न डुलते है। अपने षरीर के भीतर प्रविष्ट आत्मा रूपी देवा को पूजो। मंदिर में क्या करने जाओगे।)

गुरु घासी दास ने हिंसा का विरोध किया। उनके अनुसार संसार के जीव एक समान हैं। किसी जीव को सताना एवं हत्या करना महापाप है।

तरफत मछली ल गुरु पानी म ढ़ीले

उधे दिन मछरी ल नवा जनम मिले,

दया मया ल देख गुरु के

साथ यह भी.......

मत भख रे कसइया मइया ल न।[18]

---

[17] वही पृष्ठ 58

[18] वही पृष्ठ 59

(तड़पती मछली को गुरु जी ने पानी में छोड़ा। उसी दिन अथवा तभी मछली को पुर्नजन्म मिल गया। गुरु की दया को देखकर सभी मानव जगत को सीख लेनी चाहिए। ए कसाई गाय माता जो कि मानव जीवन के आर्थिक एवं सामाजिक जीवन की रेखा है, इसको मत मारो।)

अपनी पूर्वगामी निर्गुण संत परंपरा के अनुरूप ही गुरु घासी दास ने ह्दय की पवित्रता पर अधिक बल दिया। उनके अनुसार ह्दय ही सभी भावों का स्त्रोत है। ह्दय के भावों को षारीरिक भंगिमाओं द्वारा पंथी नृत्य में सहजतापूर्वक प्रदर्षित किया जाता है। गुरु घासी दास की वाणियों में ह्दय के भाव को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गयी। उनके षब्दों में मनुष्य का ह्दय ही मनुष्य के कर्म, वाक एवं उसके क्रिया कलापों को निर्देषित करता है। मनुष्य के ह्दय में घृणा, ईर्ष्या एवं द्वेष का कोई स्थान नहीं है। घृणा, ईर्ष्या एवं द्वेष मनुष्य को असामाजिक बनाते हैं और एक अस्वस्थ समाज एवं कमजोर मानसिक सिद्धांतों का निर्माण करती है। जिससे मानव समाज एक सूत्र में न होकर टुकड़ों में बिखर जाता है अंततः संघर्ष एवं समष्टिता की परंपरा समाप्त हो जाती है। अतः गुरु घासी दास ने मानव जीवन से आह्वान किया कि ह्दय की षुद्धि पर ध्यान दें। घृणा, ईर्ष्या एवं द्वेष को अपने आप से दूर ही रखें अन्यथा उनके जीवन की उपदेयता समाप्त हो जायेगी। गुरु घासी दास ने पवित्र ह्दय की महत्ता को सर्वोच्य माना है। उनके अनुसार यदि आपका ह्दय पवित्र एवं दोषरहित है तो सतनाम की आराधना के लिये किसी भी भौतिक अथवा अभौतिक वस्तु की आवष्यकता नहीं है। गुरु घासीदास के इन्हीं विचारों से प्रभावित होकर लोक परंपरा में कायिक षुद्धता के स्थान पर भावनाओं की षुद्धता पर अधिक महत्व दिया गया। जिसका प्रभाव लोक सृजित पंथी गीतों में सहजता पूर्वक देखा जा सकता है।

तोला कहवां ले लानव गुरु आरूग फूल,
तोला कइसे के चढ़ावंव गुरु आरूग फूल
गैया के दूध ले बछरू जुठारे हे,
कोठी के अन्न ले सुरही जुठारे हे,
तरिया के पानी ले मछरी जुठारे है,
चंदा सुरूज ल राहू केतु लीले हे,
ह्रदय के भाव हे अरूग फूल,
तोला इही ल चढ़ावंव गुरु आरूग फूल।[19]

(गुरु जी तुम्हारी लिये कहाँ से आरूग का पुष्प लाऊँ। तुम्हें मैं कैसे आरूग फूल का अर्पण करूं। गाय के दूध को बछड़े ने झुठार दिया है। कुठिया (अन्नगार) के अनाज को चुहों ने झूठा दिया है। तालाब के पानी को मछली ने झूठा कर दिया है। चन्द्रमा एवं सूर्य को राहू केतु खा गया हैं मेरे लिये ह्रदय का भाव ही आरूग फूल है। तुम्हें ह्रदय के यही आरूग फूल अर्पण करूँगा।)

गुरु घासीदास ने "सतनाम" की महत्ता एवं विषिष्ट गुण का प्रचार–प्रसार किया। गुरु घासीदास का "सतनाम" निर्गुण एवं अनंत है। उसका कोई रूप अथवा कोई आकार नहीं है। वह परम षक्तिषाली तथा सर्वव्याप्त है। उसे पाने के लिए देवालय जाने की आवष्यकता नहीं है। वह जन–जन के व्याप्त है और उसको चेतना के द्वारा पाया जा सकता है। 'सतनाम' की उद्घोषणा की। वस्तुतः गुरु घासी दास के इसी मौलिक एवं सैद्वान्तिक वाणी को उनके अनुयायियों ने अपने व्यावहारिक एवं सामाजिक जीवन में उतारा है। पंथी नृत्य पर भी इसकी छाप देखी जा सकती है। यद्यपि सतनाम पंथ की स्थापना से लेकर अब तक ढ़ाई सौ वर्ष के इतिहास में सतनाम के स्वरूप एवं उसके

[19] जे. आर. सोनी, पंथी गीत और राष्ट्रीय चेतना, पृष्ठ–21

व्यावहारिकता को लेकर मौखिक परंपरा में विलक्षणताएँ एवं विभिन्नताएँ देखी जा सकती है। मौखिक परंपरा में गुरु घासीदास के वचनों को आधार एवं प्राथमिक सिद्धांत मानकर अनेक मिथकों एवं संकेतों की रचनाएँ की है। जिसके फलस्वरूप "सतनाम" के रूप एवं उपादेयता में एक नवीनता बनी रही है। वर्तमान में पंथी नृत्य में "सतनाम" को केन्द्र बनाकर गुरु घासीदास की मूल रचनाओं के साथ लोक–जीवन द्वारा निर्मित दोनों ही प्रकार की रचनाओं में गाया जाता है। वस्तुतः पंथी नृत्य एवं गीत में "सत्य का आग्रह एवं "सतनाम की विषिष्टता" लोकधर्मी बन कर आए है। यह सत्य और सतनाम बिना किसी दार्षनिक ऊहापोह के मानवीय आचरण के धरातल पर उभर कर आया है। गुरु घासीदास का विष्वास है कि जो आंतरिक सत्य है, वह बिना किसी माध्यम के स्वतः ही सामने प्रकट हो जाता है और इसी सत्य की मानवीय एवं सामाजिक मूल्यों में आवष्यकता है।

1. नाम के मंदिर मा, सत्य नाम के मंदिर मा।
   तोर दियना जय हो, सतनाम के मंदिर मा।।[20]
2. घासी दास बाबा कहय, जपो सतनाम हो।
   केवल एक ही सत्य को, मानना सभी संतों।।[21]

एक अन्य कथन के अनुसार–

अजर अमर हे सत्य,
मार सकय नहिं कोय
अकाट्य सत्य हे काल
जीत सकय नहीं काये।[22]

[20] जे. आर. सोनी, गुरू घासी दास की अमर कथाए पृष्ठ–18
[21] वही पृष्ठ–18
[22] राम प्रसाद कोसरिया, सतनाम के विरवा पृष्ठ–10

(सत्य अजर और अमर है, जिसको कोई नहीं मार सकता। सत्य एक अकाट्य एवं अविजित वस्तु जिसको कोई जीत नहीं सकता।)

मानवीय असमानता एवं जातिगत षोषण के विरूद्ध गुरु घासी दास ने एक सामाजिक एवं सैद्धान्तिक विद्रोह किया। मनसा, वाचा एवं कर्मणा उन्होंने मानवीय असमानता को दूर कर उसके स्थान पर मानवीय समता की सार्वभौमिक सत्ता की पुरजोर वकालत की। गुरु घासी दास ने अनुसार ऊँच–नीच, जाति–पाँति प्रकृति निर्मित न होकर मानव निर्मित है। मानव जीवन के ऊपर ये बाहरी नियम थोपकर एक विषिष्ट वर्ग ने अपने स्वार्थों की सिद्धि की है। अपने समकालीन भोंसला षाही राज्य में दलितों एवं अस्पृष्यों के ऊपर हुए अत्याचारों ने उनके मन में खिन्नता उत्पन्न हुई। दलितों के प्रति उच्च वर्ग एवं राज्य गत दोनों प्रकार के षोषणों ने उन्हें विद्रोह करने पर उकसाया। फलस्वरूप इस दोतरफा षोषण के खिलाफ उनके विचार उनकी वाणी एवं षिक्षाओं में मुखरित हुए।

मनखे मनखे ला जान
सगा भाई के समान।
बाबा घासी दास गुरु समझाय हवे हो,
मानुष चतुर सुजान
गुन–गुन के गुरु बाबे भाखे है जरूर हो,
करिया, गोरिया, नर, नारी, मनखे है जरुर हो,
ये मा जात कइसे तंय हा बनाई डारे हो,
तुन बनौकी ले कइसे बिगाड़ डारेव हो।[23]

[23] जे. आर. सोनी, गुरू घासी दास की अमर कथाए पृष्ठ–22

मनुष्य–मनुष्य को एक समझो, जैसे वह तुम्हारा सगा भाई हो। बाबा गुरु घासी दास समझा रहे हैं। बाबा गुरु घासीदास ने मानव जीवन एवं उसके सभी गुणों को परख लिया है। काला, गोरा, नर एवं नारी आखिरकार सभी तो मनुष्य है। इसमें तूने जाति–पाँति आखिर कैसे बना ली है। इस जाति–पाँति के द्वारा तुमने उनकी समरसत्ता एवं अस्तित्व को कैसे कुंठित कर दिया है।

मानव जाति की समरसत्ता एवं स्वतंत्रता के साथ–साथ सत्य की मौलिकता एवं सर्वोच्चता तथा सतनाम की महत्ता पर भी पंथी गीत बनाए गये हैं।

सतनाम सतनाम सतनाम सार
गुरु महिमा अपार
होई जाही बेड़ा पार,
सतगुरु महिमा बता दे
सत्य में हे धरती, सत्य में आकाष हो,
सत्य में है चंदा, अऊ सत्य में सुरूज हो,
सत्य में तर जाही संसार, किए गुरु हा हमार,
अमरित धार बोहाई दे,
होई जाही बेड़ा पार, सतगुरु महिमा बताई दे[24]

(सतनाम ही इस जग का सार अथवा प्रमाण है। गुरु घासी दास की महिमा अपार है। जो अमृत प्रदान करता है जिससे इस जग से मुक्ति मिल जाती है। सतगुरु की महिमा अपार है। सत्य में धरती है और इसी सत्य में आकाष है। सत्य में ही चंदा है और सत्य में ही सूर्य है। इसी सत्य के द्वारा ही संसार को मुक्ति मिलेगी। हमारे गुरु ने ऐसी युक्ति दी है। हे गुरु हमें अमृत प्रदान करो ताकि हमारा जीवन सफल हो और हम इस जीवन–मृत्यु के चक्र से निकलकर परम् तत्व अर्थात सतनाम को प्राप्त करें।)

---

[24] वही पृष्ठ–18

पंथी नृत्य के कलात्मक तत्त्व

पंथी नृत्य सतनामी समाज की विलक्षण सांस्कृतिक विरासत होने के कारण यह सतनामियों द्वारा ही संरक्षित है। छत्तीसगढ़ के विभिन्न अंचलों में फैली सतनामी जनसंख्या द्वारा अपनी थोड़ी बहुत भौगोलिक विषमता के कारण पंथी नृत्य की मंचीय संयोजन में थोड़ा बहुत परिवर्तन किया गया है। प्रायः पंथी प्रयुक्त विषय–वस्तु की परंपरा एक समान ही है। बिलासपुर, सारंगढ़, रायपुर, दुर्ग एंव कवर्धा के अंचलों की भाषायिक एवं भौगोलिक विषमताओं ने पंथी के कलात्मक एवं भाषायी पहलुओं पर थोड़ा बहुत प्रभाव डाला है। फिर भी पंथी नृत्य का सौन्दर्य बोध एवं इसके भीतर छुपा हुआ मानवीय संदेष एक सा है।

ट्रेनिंग

पंथी नृत्य को मंचीय प्रस्तुति को परिपक्वता देने के पूर्व कोई विषेष पूर्वाभ्यास की षब्दावली नियम एवं परिष्कृत व्याकरणीय मुद्राओं का विधान नहीं है। छत्तीसगढ़ के विभिन्न ग्रामीण अंचलों में सतनामियों के गुरुद्वारे से संबद्व पंथी टोलियाँ हुआ करती है, जो समय–समय पर विभिन्न धार्मिक एवं सांस्कृतिक त्योहारों पर पंथी नृत्य की प्रस्तुतियाँ देती है। मौखिक पंरपरा के अनुसार पूर्व काल में पंथी टोलियों का चयन सतनाम पंथ के गुरूद्वारों से संबद्ध भंडारी एवं राजमहंत द्वारा ग्रामीण युवाओं को मिलाकर किया जाता है। कलाकारों के चयन में इस बात का ख्याल रखा जाता था कि कलाकार षारीरिक रूप से स्वस्थ, स्फूर्तिवान एवं बलषाली होना चाहिए। जिससे वह एक लंबे समय तक निरंतर नृत्य कर सके। द्रुत गति वाली प्रकृति होने के करण नृत्य एक ऊर्जावान एवं विलक्षण नृत्य षैली है जिसमें षरीर के द्वारा विभिन्न करतबों के द्वारा सतनाम एवं उसके विभिन्न प्रतीकों की अभिव्यक्ति की जाती है।

पंथी नृत्य के पूर्वभ्यास में भण्डारी अथवा राजमहंत की एक विषिष्ट भूमिका रहती है। भण्डारी अथवा राजमहंत पंथी कलाकारों को उनके नृत्य के भावों एवं मुद्राओं में एक दार्षनिक पुटता प्रदान करते हैं। प्रायः पंथी नृत्य का पूर्वाभ्यास गुरुद्वारा के अखाड़ों में किया जाता है। यह पूर्वाभ्यास संभवतः कृषि कार्यों से मिले अवकाष पर एवं सतनामी समाज के पर्वों एवं उत्सवों के पूर्व कुछ दिन पहले से किया जाता है ताकि नियत समय पर एक उन्नत प्रस्तुति दी जा सके। पंथी नृत्य से जुड़े हुए पूर्वाभ्यास के विषम परम समाज के वयोवृद्ध चिंतक एवं समाज सेवक जी.डी. जॉगड़े के अनुसार, पंथी नृत्य सतनामियों के षरीर के अंग–अंग एवं उसकी भावनाओं एवं संवेदनाओं में घुला मिला है। इसलिये पंथी नृत्य के किसी विषेष पूर्वाभ्यास की आवष्यकता नहीं होती। प्रायः ग्रामीण सतनामी समाज के बालकों का बचपन से ही पंथी नृत्य से अंतरंग संबंध होता हैं। अपने बचपन एवं सम–सामयिक घटनाओं से वे पंथी नृत्य को अपने दैनिक जीवन में उतारते हैं। संभवतः उसी अवस्था से पंथी नृतक के जीवन का प्रारंभ होता है जो किषोरावस्था एवं युवा अवस्था में अपने चरम उत्कर्ष पर पहुँच जाता है। इन पंथी कलाकारों की सहायता एवं नृत्यों में सौन्दर्य एवं तकनीकी सुधार के लिये कुछ वयोवृद्ध पंथी नर्तक होते हैं जो अपने अनुभव एवं योग्यता से नवयुवक पंथी नर्तकों को परिचित करवाते है। साथ ही उसकी प्रस्तुति नृत्य के विभिन्न आयामों में विषिष्टता लाते हैं। पंथी नृत्य के सीखने एवं सिखाने की प्रक्रिया में गुरु षिष्य परंपरा अत्यंत जटिल नहीं दिखाई देती। प्रायः पुराने पंथी नर्तक अपनी स्वेच्छा से नवयुवकों को पंथी सिखाते हैं।

पंथी नृतकों की सामाजिक पृष्ठभूमि

पंथी नृतक प्रायः सतनामी समाज के होते है। सतनामी समाज में आई बंजारा, डहेरिया आदि जातियों में पंथी नृत्य की एक विषिष्ट परंपरा है। प्रसिद्ध अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त् देवदास बंजारे बंजारा जाति के ही थे। प्रायः सभी पंथी नृतक ग्रामीण एवं

कृषि प्रधान समाज से जुड़े होते हैं। ग्रामीण स्तर पर सतनामी समाज के ज्यादातर लोग भूमिहीन होने के कारण मजदूरी में संलग्न है। छिट–पुट रूप से सतनामी समाज कृषि कार्यों में भी जुड़ा हुआ है किंतु इस समुदाय की संख्या कम है। पंथी नृत्य जो एक पुरुष प्रधान नृत्य षैली है इसलिए ग्रामीण समुदाय के पुरुष ही इसमें भागीदारी लेते हैं। यद्यपि आज के बदलते हुए सामाजिक परिवेष एवं तकनीकी विकास के प्रचार–प्रचार ने महिलाओं को भी इस नृत्य ने अपनी ओर आर्कषित किया है। वृहत स्तर पर तो नहीं केवल षहरी सतनामी समुदाय की महिलाओं ने पंथी नृत्य में भागीदारी लेना प्रारंभ कर दिया। ऐसी पंथी नृत्य मंडलियों में महिलाओं का ही प्रवेष होता है। पुरुषों को ऐसी प्रस्तुतियों में भाग लेने की पूर्णतः निषिद्धि है। महिलाओं की इस प्रकार की पंथी नृत्य प्रस्तुतियाँ केवल महिलाओं दर्षकों तक ही सीमित है। रायपुर के सतनामी समुदाय केन्द्र में 18 दिसम्बर 2008 को गुरु घासी दास जयंती के अवसरों पर महिलाओं ने पंथी नृत्य की प्रस्तुतियाँ दी। इस अवसर पर सभागार में महिलाएँ ही नृतक थी और महिलाएँ ही दर्षक। बारी–बारी से लगभग तीन घंटे तक महिलाओं द्वारा पंथी नृत्य का प्रस्तुतिकरण किया गया। इस समूची प्रस्तुति में गुरु घासीदास एवं उनके चमत्कारों के विषय में पंथी गीत गाये गये। इस प्रस्तुति में महिलाओं ने अपने घरेलू जीवन एवं दिन–प्रतिदिन के कार्यों को भी पंथी में पिरोया। "यही पार जमुना, यही पार जमुना बीच में जसोदा मोरे ललना" में गुरु बालकदास एवं उनकी माँ सफुय की तुलना जसोदा एवं कृष्ण के बीच प्रेम के रूपक के रूप में की गई। इसी प्रकार की अन्य गीतों में माँ, पुत्र एवं स्त्रीत्व की गरिमा को अभिव्यक्ति किया गया। षहरी क्षेत्रों की महिलाओं के समानांतर ग्रामीण क्षेत्रों की महिलाएँ भी पंथी नृत्य करने लगी है। यद्यपि इनकी दर्षकों एवं कलाकारों की संख्या षहरी क्षेत्र की महिलाओं की तुलना में कम है फिर भी ग्रामीण स्तर पर इन्होंने अपने आपको सांस्कृतिक एवं कलात्मक रूप में पुरुषों के बराबर प्रतिस्थापित किया है।

सतनामी समाज में स्त्रियों की स्वतंत्रता स्वनिर्भरता एवं बराबरी इस समाज की बड़ी उपलब्धि है जिसका श्रेय छत्तीसगढ़ में सतनाम पंथ की षिक्षाओं को जाता है। कबीर तथा अन्य निर्गुण संतों ने जहाँ नारी जाति की उपेक्षा कर उसे विभिन्न दुखों एवं रागों की खान कहा है वहीं इसके विपरीत गुरु घासी दास ने नारी समानता एवं उनकी स्वतंत्रता की बात की है। उनके द्वारा उद्घोषित "मनखे–मनखे एक समान" की अवधारणा ने स्त्री समाज को भी मुक्त एवं समतावान रखा है। छत्तीसगढ़ के सांस्कृतिक एवं सामाजिक जीवन में विषेषकर सतनामी समाज में स्त्रियों के प्रति समानता एवं स्वतंत्रता भी भावना रही है इसका एक विषेष कारण छत्तीसगढ़ में निवास करने वाले आदिवासी समाज यथा गोंड एवं हलबा तथा अन्य आदिवासी समाजो का प्रभाव है। यह आदिवासी समाज मातृसत्तामक है, जहाँ पर स्त्रियों को स्वयं के एवं पारिवारिक मुद्दों पर निर्णय लेने के अधिकार होते हैं। सामाजिक परस्परता एवं एक–दूसरे पर निर्भर होने के कारण सतनामी समाज ने काफी हद तक स्त्रियों को पारिवारिक एवं सामाजिक निर्णय लेने की अनुमति दी है। सतमानी समाज के महिलाओं को पुनर्निवाह करने की भी अनुमति प्राप्त है साथ ही उन्हें पारिवारिक संपत्ति प्राप्त करने का अधिकार है। महिलाओं की इस स्वतंत्रता ने उन्हें पंथी नृत्य में कलाकार बनने का मार्ग खोला है। पुरुषों द्वारा प्रारंभ में किए रहे पंथी नृत्य के एकाधि ाकार को तोड़ते उन्होंने अपनी उपस्थिति दर्ज की है तथा पंथी के सोपानों में एक महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

पंथी नृत्य की वेष–भूषा

पंथी नृतक की वेष–भूषा अत्यंत साधारण होती है। प्रायः पंथ की सहजता एवं सात्विकता से जुड़े होने के कारण इसकी वेष–भूषा ने बाहरी चमक–दमक एवं आर्कषण की कमी है। पंथी नृत्य ने ढ़ाई सौ वर्ष की यात्रा कलात्मक एवं सौन्दर्य बोधात्मक स्तर

के स्वरूप ही अपने आप को समय के प्रवाह के अनुरूप ढ़ाला है। अपने प्रांरभिक काल में पंथी नृत्य में नृतक प्रायः सफेद रंग की धोती, जो प्रायः घुटने तक मुड़ी होती है तथा सफेद रंग की कुर्ती पहनते है। कमर के ऊपर हरे, पीले लाल एवं नीले रंग की कपड़े का कमर बंध बाँधते हैं। पैरों में घुंघरू तथा माथे पर पीले एवं हरे रंग की पट्टी अथवा ऐसे ही रंग की पगड़ी तथा गले में फूलों की माला अथवा चमकीली माला पहनते है ताकि माला का आर्कषण दर्षकों का ध्यान उनकी ओर खींचे। सफेद रंग की वेष–भूषा का प्रगाढ़ संबंध सतनाम पंथ के दार्षनिक पहलू से जुड़ हुआ है। सफेद रंग को सात्विकता, षांति, अहिंसा एवं पवित्रता का संकेत माना जाता है। अतएव उस पवित्रता एवं सात्विकता को पंथी वेष–भूषा में उतारने की कोषिष की गई। वस्तुतः छत्तीसगढ़ में एक ही जगह में दो भिन्न–भिन्न वेष–भूषाओं का प्रचलन आज के दौर में देखने को मिलता है। पहले प्रकार की वेष–भूषा पारंपरिक है जिसमें पंथी नृतक सफेद परिधानों का प्रयोग करते हैं तथा दूसरी प्रकार की वेष–भूषा में पंथी नृत्य में आर्कषण उत्पन्न करने के लिए सफेद कुर्ती के स्थान पर चमकीली कुर्ती का प्रयोग करते हैं जो प्रायः सिल्क एवं अन्य कपड़े की बनी होती है। इन दोनों प्रकार की वेष–भूषाओं की एक ही मंच पर झलक रायपुर स्थित पेंषनवाड़ा में पंथी नृत्य में देखने को मिली। कुछ पंथी नृतकों की टोली ने सफेद रंग का पारंपरिक परिधान पहना तथा उनके बाद आई एक अन्य टोली ने आर्कषक एवं चमकीली वेष–भूषा का प्रयोग किया। इन उदाहरणों से यह प्रतीत होता है कि पंथी नृत्य अपने आप में एक अत्यन्त लचीली विधा है जिसके लिए बाहरी आवरण एवं वेष–भूषा की भूमिका अत्यन्त गौण है यद्यपि जहाँ एक ओर दर्षकों का सफेद रंग से जुड़ाव होने के करण इस रंग का अत्यधिक महत्व दिया जाता है वहीं एक ओर दूसरे आर्कषक रंग के प्रयोग से कोई आपत्ति नहीं है बषर्ते पंथी नृत्य की मुख्य विषय वस्तु पर कोई परिवर्तन न हो।

पंथी नृत्य में प्रयुक्त वाद्ययंत्र

पंथी नृत्य में प्रयुक्त वाद्ययंत्र अत्यन्त मौलिक एवं कृषि प्रधान समाज की पृष्ठभूमि से जुड़े हुए है। "पंथी नृत्य में मुख्यतः मांदर, झांझ, मंजीरा एवं घुंघरू का वाद्ययंत्र के रूप में प्रयोग करते हैं। मांदर वस्तुतः उत्तर भारतीय ढ़ोल और मृदंग का परिष्कृत रूप है अथवा यू कहें कि दोनों के समिश्रण से बना एक वाद्ययंत्र है। जो लकड़ी के खोल पर दोनों तरफ से चमड़े की खाल से मढ़ा जाता है।"[26] मांदर से निकलने वाला स्वर तीक्षण एवं भारी न होकर मध्यम प्रकार का स्वर देता है। मांदर की छाप पर झांझर लय मिलता है। झांझर लकड़ी के फ्रेम में ताँबे के गोल छल्लों को लोहे के तारों में पंक्तिबद्ध डालकर बनाया जाता है। ताँबे के छल्लों के आपस में टकराने से इससे तीव्र ध्वनि निकलती है। दोनों यंत्रों से निकले मिश्रित स्वर पंथी नर्तकों के घंघुरू का साथ देते है वस्तुतः पंथी नर्तक के पैरों में बंधे हुए घुंघरू भी एक वाद्ययंत्र का कार्य करते हैं। घुंघरू तीव्र और मंद ध्वनि पंथी नृतक के मुद्राओं एवं उसके पैरों की गतियों पर निर्भर करती है। पंथी नृत्य प्रस्तुति के पार्श्व में खड़ा एक अन्य कलाकार मंजीरा बजाता है।

पंथी नृत्य का कलात्मक पहलू

पंथी नृत्य प्रायः पन्द्रह–सोलह नर्तकों द्वारा गोल घेरा बनाकर किया जाता है। ये सभी नर्तक पुरुष ही होते है। पंथी नृत्य में एक मुख्य गायक होता है उसके साथ सहायक कलाकार मांदर डालकर बजाता है। मुख्य गायक मांदर बजाने वाले कलाकार के साथ घेरे के मध्य खड़ा होकर गायक पूरी पंथी पार्टी का प्रतिनिधित्व करता है। मुख्य गायक के स्वरों में अन्य कलाकार स्वर मिलाकर एक घेरे में नृत्य करते हैं। छत्तीसगढ़ के भौगोलिक विषमताओं में मांदर के प्रयोग में भिन्नता आई है। "रायपुर, दुर्ग एवं

---

[25] परदेशी राम वर्मा, पंथी गीत और राष्ट्रीय चेतना, (सं. जे. आर. सोनी) पृष्ठ–60

बिलासपुर जिलों की पंथी आयोजनों में मांदर के प्रयोग की विभिन्नताएँ देखी जा सकती है। राजनांद गाँव जिले की पंथी पार्टियाँ मांदर तथा अन्य वाद्ययंत्रों को मंच पर नीचे रखकर बजाते है तो वहीं दुर्ग जिले में पंथी कलाकार गले में मांदर डालकर ''सतनाम की जय'' बोलते हुए मंच पर प्रवेष करते है। नर्तकों के मंच पर घुसते ही वे एक घेरे का निर्माण कर लेते है।"[26] पंथी नृत्य का मुख्य गायक ''साखी'' से गायन का प्रारंभ करता है। साखी खत्म होते ही अन्य नर्तक उस साखी के आखिरी पद् को दोहराते है। साखी के पष्चात ''धुन'' गायी जाती है। यह धुन आगे आने वाले गीत के गायन प्रकृति को निर्धारित करती है। धुन के पष्चात दौड़ गायी जाती है। दौड़ में गायन षैली तीव्र हो जाती है। दौड़ में मुख्य गायक के साथ सभी नृतक भी तीव्र स्वर में गाते हैं। दौड़ के पष्चात पद् का विधान है जिसमें गायन षैली धीमी हो जाती है। पद् के पष्चात घोर जिसमें पद् के आखिरी वाक्य को दोहराते है। घोर के पष्चात फिर दौड़ गायी जाती है। साखी, धुन, दौड़, पद और घोर का सिलसिला अनवरत चलता है। "सामान्य रूप से पंथी नृत्य में प्रयोग किये जाने वाले गीत तुकान्त और अतुकान्त दोनों ही रूप में मिलते हैं। इनमें अक्सर स्वरों एवं व्यंजनों की तुक मिलती है तथा कहीं–कहीं षब्दों एवं प्रतिध्वनि की भी तुक मिलती है इसके साथ ही कहीं स्वर तो कहीं षब्द की प्रधानता होती है। परन्तु इन सबके बावजूद पंथी नृत्य इन षैलियों में पूर्ण रूप से बंधा नहीं रहता।"[27] इसके संगीत संयोजन में संगीतकार की विषेष महत्ता होती है। संगीतकार के विवेक पर कभी–कभी गायन का प्रारंभ साखी से न करते हुए धुन से प्रारंभ करते है और दौड़ के स्थान पर पटक का प्रयोग करते है पटक मुख्यतः पंथी गीत और अंतयंत धीमी और विराम में ला देती है। पटक के तुरंत बाद पद् गाया जाता है जिससे पंथी प्रस्तुति पूर्व रूप में आ जाती है। गायन षैलियों के विलक्षणता समान्तर नृत्य षैली की अपनी एक

[26] वही पृष्ठ–62

[27] आई. आर. सोनवानी, पंथी गीत और राष्ट्रीय चेतना (सं. जे. आर. सोनी) पृष्ठ–100

विषिष्टता है। नृत्य प्रायः नर्तकों द्वारा एक घेरे में हाथ में हाथ डालकर किया जाता है। नृत्य का स्थान प्रायः खुला होता है जिसे लोक भाषा में अखाड़ा कहते हैं। अखाड़े के एक कोने अथवा मध्य में जयस्तम्भ स्थापित होता है। यद्यपि भौतिक रूप से जयस्तम्भ न हो तो सांकेतिक रूप से जयस्तम्भ की स्थापना की जाती है। खुले स्थान पर नृत्य जयस्तम्भ के पार्ष्व में एवं उसके चारों ओर किया जाता है। पंथी नृत्य में विभिन्न षारीरिक मुद्राओं एवं करतबों से सतनाम एवं गुरू घासीदास की प्रस्तुति में उपस्थिति को अभिव्यक्त जाता है। "दुर्ग एवं रायपुर जिले के पंथी कलाकार, षारीरिक करतब दिखाने में माहिर है। प्रस्तुति के दौरान आग में जलते हुए गोले से कूदना, आग में जलते हुए पहिए को सर पर रखकर घुमाना यहाँ के पंथी नर्तकों की विषिष्टता है।"[28] सामान्य रूप से छत्तीसगढ़ के पंथी प्रस्तुतियों पंथी कलाकारों द्वारा एक के ऊपर एक चढ़कर पिरामिड बनाकर उस पर सफेद झंडा फहराना सांकेतिक रूप से सतनाम एवं गुरू घासी दास की विजय का संकेत देती है। पंथी कलाकारों द्वारा सामूहिक रूप सांकेतिक स्तम्भ अथवा मीनार बनाने का प्रचलन समूचे छत्तीसगढ़ की पंथी नृत्य में देखने को मिलता है। दूसरी अन्य मुद्रा में कुछ नर्तक कमर की तरफ से आगे की ओर झुक जाते है उनकी कमर पर अन्य एक नर्तक चढ़ जाता है तथा हाथ में सफेद ध्वज लेकर गुरू घासी दास की उपस्थिति को दर्ज करवाता है। नर्तकों के अलावा मांदर वादक की भी अपनी अनोखी पहचान है। मांदर बजाने वाला कलाकार भी कभी–कभी अपनी वास्तविक स्थिति को तोड़ते हुए करतब दिखाने लगता है। सामान्यतः वह नर्तकों के कंधों पर खड़ा होकर मांदर बजाता है तो कभी जमीन पर पीठ के बल पर लेटकर मुख्य गायक को अपनी छाती पर चढ़ाकर वह मांदर बजाते हुए थिरकता है। सामान्य रूप से पंथी नृत्य में प्रयोग किए गये विभिन्न षारीरिक मुद्रायें एक व्याकरण में बंधी न होकर स्वछंद एवं मुक्त है।

[28] परदेशी राम वर्मा, पंथी गीत और राष्ट्रीय चेतना, (सं. जे. आर. सोनी) पृष्ठ–62

कभी–कभी नृतकों के ताल में एकरूपता होती है तो कभी वे उसे तोड़कर विभिन्न षारीरिक करतब करने लगते है। पंथी नृत्य की सभी मुद्रायें परिवर्तनषील एवं लचीली है। सरल एवं सुगम होने के साथ–साथ इनमें समरूपता एवं समपूर्णता है। पंथी नृत्य के समूचे नृत्य संरचना एवं विन्यासों में छत्तीसगढ़ के अन्य लोकनृत्यों की छाप दिखाई देती है। नृतकों द्वारा सांकेतिक रूप से स्तम्भ अथवा मीनार बनाना राउत जाति की सांस्कृतिक अभिव्यक्तियों में समान रूप से देखा जा सकता है। राउत छत्तीसगढ़ में बसने वाली एक पिछड़ी जाति है, जिनका सामाजिक एवं आर्थिक जीवन सतनामियों की तरह ही है। राउत मुख्य रूप से राजनॉदगाँव, दुर्ग, बिलासपुर, धमतरी एवं कांकेर जिलों में पाये जाते हैं। राउत जाति के इस नृत्य को "राउतनाचा" कहते हैं। राउतनाचा प्रायः राउत (अहीर) जाति के सांस्कृतिक, धार्मिक एवं सामाजिक अवसरों पर किया जाता है।

पंथी नृत्य में हस्त विन्यास एवं हाथों में हाथ डालकर सामूहिक रूप से नृत्य करने के षैली आदिवासी नृत्य परंपराओं यथा "बैगा" एवं "सुआ नृत्य" नृत्य से ली गई है। सुआ नृत्य मुख्य रूप से छत्तीसगढ़ के अंचलों में आदिवासी जनजातियों यथा गोंड एवं हलबा जातियों में किया जाता है। अतः पंथी नृत्य विभिन्न आंचलिक नृत्य षैलियों का मिश्रण है जिनका परिष्कृत रूप इस नृत्य में प्रयोग किया जाता है।

दर्षक

पंथी नृत्य का दर्षक वर्ग पूर्ण रूप से सतनामी समाज से आता है। पंथी नृत्य का विषिष्ट आधात्मिक एवं धार्मिक आध्यात्मिक अभिव्यक्ति का वाहक होने के कारण दर्षक जिनमें सतनामी समाज के पुरुष, महिलाएँ एवं बच्चे होते हैं। पंथी नृत्य को मनोरंजन की दृष्टि से न देखते हुए एक धार्मिक अभिव्यक्ति के स्त्रोत के रूप में देखते हैं। खुले स्थान में पंथी नृत्य के चारों ओर दर्षक होते हैं जो नर्तकों की विभिन्न मुद्राओं पर "सतनाम की जय" "गुरु घासी दास की जय" आदि के नारे लगाकर कलाकारों का उत्साह वध

नि करते है तथा स्वयं की धार्मिक अथवा आध्यात्मिक मनोदषाओं को अभिव्यक्त करते हैं। सतनाम पंथ से जुड़े हुए विभिन्न तीर्थ स्थलों पर समय–समय पर मेलों का आयोजन होता है। इनमें तैलासी, भंडारपुरी एवं गिरौधपुरी के मेले प्रसिद्ध है। इन मेलों में दस–पन्द्रह दिनों तक पंथी नृत्यों का आयोजन एक अनवरत रूप से होता है। मेलों में पहुँचने वाले तीर्थ यात्री दार्षनिक स्थलों के साथ–साथ इन नृत्यों को सुबह से षाम तक देखते हैं तथा अपनी धार्मिक आस्था "सतनाम" के प्रति समर्पित करते हैं। मेलों में पंथी नृत्य "सतनाम" के नारों से आकाष गूंजने लगता है। दृष्य अत्यन्त विंहगम एवं आस्थामय प्रतीत होता है। दर्षकों की यह सामूहिक अभिव्यक्ति न केवल उनके सामाजिक एवं आध्यात्मिक जीवन को प्रकट करती है वरन् उनकी स्वतंत्र पहचान भी बनाती है।

प्रांगण में स्थित जैतखाम

मंच पर स्थापित जैतखाम

रंगोली

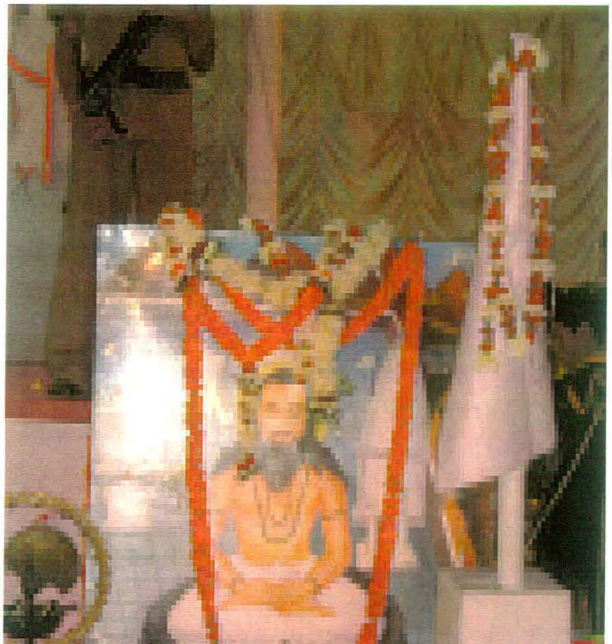

गुरु घासीदास

शारीरिक करतब दिखाते नर्तक

मंच पर गुरू घासीदास की सांकेतिक अभिव्यक्ति

घेरे में नर्तक

पिरामिड का निर्माण

सतनाम की अभिव्यक्ति

गुरू घासीदास की सांकेतिक अभिव्यक्ति की मुद्रा

जैतखाम के इर्द गिर्द नृत्य करते नर्तक

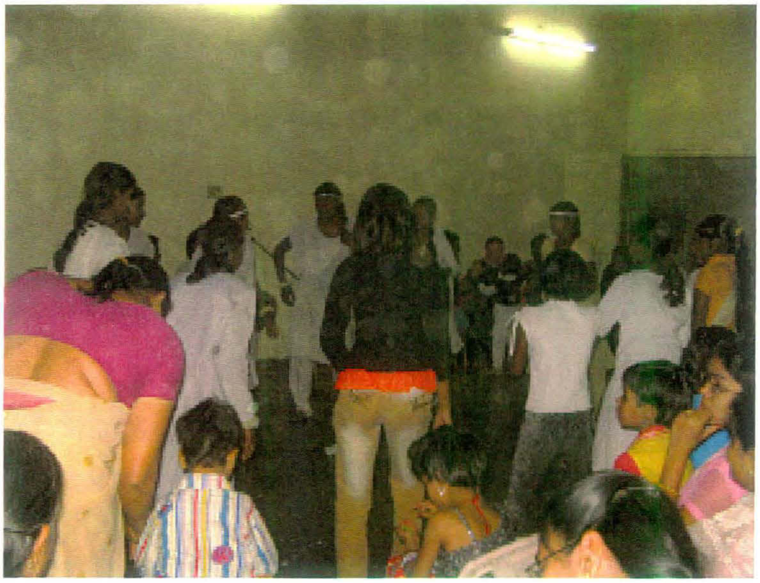

रायपुर में महिलाओं की पंथी प्रस्तुतियां

अध्याय – 3

पंथी के बदलते परिवेष

सतनामी समाज एवं उससे सबद्ध सतनाम पंथ की मौखिक परंपरा अपने सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक परिदृष्यों के अनुसार बदलती आयी है। अपने ढ़ाई सौ वर्ष की यात्रा में सतनाम पंथ ने अपनी मूल संरचना एवं अपने विभिन्न धार्मिक संकेतों, मिथकों, क्रिया–कलापों, रीति–रिवाजों को बाहरी प्रभावों एवं सतनामी समाज की सामाजिक, राजनैतिक आवष्यकता के अनुसार परिवर्तित किया है। इस बदलाव की प्रक्रिया में सतनाम पंथ की यात्रा को विभिन्न चरणों में देखा जा सकता है। प्राथमिक चरण में– गुरुघासी दास की मृत्यु के पष्चात उनके परिवर्ती सतनाम पंथी गुरुओं ने अपने समकालीन सामाजिक एवं राजनैतिक परिदृष्यों को ध्यान में रखते हुए सतनाम पंथ की विषिष्ट पहचान को बरकरार रखने के लिए सतनाम पंथ के मिथकों, संकेतों एवं दलित समाज की मौखिक परंपरा की सरंचना में पुनर्गठन का काम किया।

पंथ की केन्द्रीय स्थिति को गुरु को विषिष्ट स्थान दिया गया और इसे एक वंषानुगत पद् मान लिया गया अब सतनाम पंथ में गुरु सतनामियों का धार्मिक एवं आध्यात्मिक नेता होने के साथ उनका राजनैतिक नेता भी हो गया। गुरु की अगुवाई में सतनामियों ने अपनी विषिष्ट धार्मिक पहचान बनाने के लिए न केवल ब्राह्मण धर्म से संघर्ष बल्कि उन्होंने छत्तीसगढ़ में फैले रहे इस्लाम एवं ईसाई धर्म को भी विरोध किया।[1]

गुरु घासीदास के पष्चात उनके पुत्र बालक दास ने सतनाम पंथ के अन्तर्गत गुरु पद् की विषिष्टता और महत्ता को स्थापित किया। उन्होंने न केवल आध्यात्मिक एवं धार्मिक स्तर पर सतनामियों को विषिष्ट स्वर प्रदान किया बल्कि राजनैतिक स्तर पर

[1] Romila Thapar, Cultural Pasts-Essays on Early Indian History Pg. 239

उन्हें एक प्रबुद्ध समुदाय बनाया। फलतः सतनामियों की बढ़ती हुए राजनैतिक महत्वाकांक्षा से प्रभावित होकर 1828 ई॰ में तत्कालीन मध्य भारत के ब्रिटिष गवर्नर कर्नल इग्नू ने गुरु बालक दास को राजा की पदवी एवं अथवा जमींदारी के विषिष्ट सनद प्रदान कर सतनामियों को राजनैतिक स्तर पर तुष्टिकृत किया।

गुरु बालकदास ने सतनामी बाहुल्य क्षेत्रों में जमींदारी आधारित अर्थव्यवस्था एवं राजनैतिक व्यवस्था का प्रचलन किया। गुरु ने अपनी सहायता के लिये राजमहंत एवं भण्डारी सरीखे पदों को अधिक विषेषाधिकार देकर उन्हें गुरु पद के समान ही वंषानुगत बना दिया। इन राजमंहतों एवं भण्डारियों का कार्य सतनाम पंथ के प्रचार–प्रसार के साथ राजस्व वसूली एवं सतनामी समाज के भीतर मेल–मिलापों एवं सामाजिक लोकाचारों को बढ़ावा देना था। सम्भवतः गुरु बालक दास का यह राजनैतिक पुर्नगठन का उद्देष्य अपने समकालीन चली आ रही सामंतषाही व्यवस्था के समान ही सतनामियों को मुख्य धारा में लाकर उन्हें षासक वर्ग बनाना था।

महेश चतुर्वेदानी के अनुसार "गुरु बालक दास ने प्रत्यक्ष जातिय संघर्ष की अवधारणा को अपनाया। सतनामी समाज को षासक वर्ग की स्थिति तक पहुँचाने के लिए बालक दास ने चना भर्री की लड़ाई" राजपूतों की सहयोगी सेनाओं को परास्त किया। इस प्रत्यक्ष संघर्ष में ब्राह्मण धर्म के रीति–रिवाज, धर्म, दर्षन एवं सामाजिक व्यवस्था की तीखी आलोचना के साथ–साथ वैचारिक जातीय युद्ध जैसे संघर्ष माध्यम बनाया गया।[2] गुरु बालक दास का पूरा जीवन इन्हीं जातीय एवं धार्मिक संघर्षों में बीता। अंततोगत्वा 1860 ई॰ में रायपुर जिले के औराबांधा नामक स्थान पर हिन्दू उच्च वर्ग एवं ईसाइयों के षड़यंत्र द्वारा उनकी हत्या कर दी गई। जहाँ आज भी उनकी समाधि है और

[2] महेश चर्तुवेदानी, निजी साक्षात्कार, अभनपुर (रायपुर) 14 अप्रैल 2008

यह स्थान सतनामियों के तीर्थ स्थान के साथ हिंदू और सतनामी समाज के वैमसमता के स्मृति के रूप में आज भी चर्चा में रहता है।"[3]

गुरु बालक दास ने सतनाम पंथ की वैचारिक चेतना को एक वर्ग संघर्ष की अवधारणा में बदल दिया। गुरु बालक दास की स्थिति एक आध्यात्मिक गुरु के रूप में गौण होकर एक राजनैतिक गुरु अथवा सामाजिक एवं जातीय षोषण के विरूद्ध एक प्रखर एवं तीक्ष्ण स्वर प्रदान करने वाले एक मसीहा के रूप में छत्तीसगढ़ के समकालीन सामाजिक पटल पर ज्यादा है।

राजनैतिक उपलब्धियों के समांनातर ही गुरु बालक दास ने सांस्कृतिक, आध यात्मिक एवं धार्मिक बिंदुओं पर एक बड़ा योगदान दिया। उन्होंने गुरुघासी दास द्वारा स्थापित मानवीय मूल्यों पर आधारित बार–बार वकालत कर सतनाम पंथ कार प्रचार–प्रसार वृहत स्तर पर सम्पूर्ण छत्तीसगढ़ में किया। सतनामी समाज के संस्कृति एवं धार्मिक संकेतों को पुनर्गठित कर उन्हें सतनाम पंथ के दर्षन एवं उपादेयता के अनुसार नियोजित किया।

प्रसिद्ध पंथी नृतक सुखराम जाँगड़े के अनुसार "गुरु बालक दास ने साधु आखाड़ों की स्थापना की। इन अखाड़ों का संबंध सतनाम पंथ के गुरुद्वारों से रहता था। इन अखाड़ों में सतनाम पंथ के प्रचार–प्रसारार्थ सतनामी समाज के सामाजिक एवं धार्मिक सम्मेलन आयोजित किये जाते थे। सतनाम पंथ के ये नवस्थापित अखाड़े उत्तर भारतीय कबीर पंथी एवं रैदास पंथी अखाड़ों से साम्यता रखते हैं। आज भी कबीर पंथ का जुना अखाड़ा इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। इन साधु अखाड़ों का प्रयोग आज भी पंथ के आचार–विचार को प्रचारित–प्रसारित में किया जाता है। गुरु बालक दास द्वारा

[3] जे. आर. सोनी, पंथी गीत और राष्ट्रीय चेतना, पृष्ठ–127

स्थापित इन्हीं आखाड़ों में सतनाम पंथ के विमर्ष के साथ–साथ पंथी नृत्य के विषय–वस्तु एवं संरचना का नवसृजन किया गया।"[4] एक वयोवृद्ध सतनामी सुधारक अलख दास जी ने बताया कि "गुरु घासी दास की षिक्षाओं एवं उपदेषों को बालक दास ने अखाड़ों के माध्यम से बड़े स्तर पर प्रचार–प्रसार किया। इसके फलस्वरूप उनके व्यक्तित्व से प्रभावित होकर बड़ी संख्या में अछूतों एवं षोषितों ने सतनाम पंथ को अपनाया।[5]"

उन्होंने बताया कि गुरु बालक दास ने सांस्कृतिक स्तर पर पंथी नृत्य के सौन्दर्य बोध एवं संरचना में प्रयोग धर्मिता पर अधिक बल दिया। पंथी नृत्य में नट् करतब मुद्राये वस्तुतः गुरु बालक दास की रचनात्मकता का प्रतिफल है। यद्यपि आज गुरु बालक दास की मूल रचनाएँ उपलब्ध नहीं किंतु लोक परंपरा में थोड़े बहुत परिवर्तनों के बाद उनकी षिक्षाओं की अभिव्यक्तियाँ आज पंथी गीतों में मिलती है। कलात्मक संरचना में फेर–बदल के बावजूद पंथी नृत्य इस काल में भी अपनी पूर्ववर्ती षिक्षाओं, उपदेषों, षोषण एवं अमानवीयता के खिलाफ संघर्ष को आत्मसात किये रहा।

गुरु बालक दास के पष्चात गुरु वंषावली के अन्य गुरुओं ने सतनाम पंथ का प्रचार–प्रसार किया। "गुरु बालक दास के परवर्ती गुरुओं की कड़ी में अमर दास, अगर दास, साहेब दास, अजब दास, अगरमन दास, अतिबल दास, अगम दास, मुक्तावन दास आदि गुरुओं के नाम प्रमुख है।"

इन सभी गुरुओं ने अपनी सामर्थ्यानुसार सतनाम पंथ की पहचान, धार्मिक, रीति–रिवाज आदि को समयानुसार परिवर्तित कर सतनामियों का धार्मिक एवं सामाजिक प्रतिनिधित्व किया। सम्पूर्ण 19वीं सदी एवं 20वीं सदी का आधा पूर्वाध सतनामियों का चतुर्दिक रूप से संघर्ष का काल कहा गया है। उपनिवेषिक षासन के आने के तुरंत

[4] सुखराम जांगड़े, निजी साक्षात्कार, कुटेसर (रायपुर) 16 दिसम्बर 2007
[5] अलख दास, निजी साक्षात्कार (रायपुर) 18 दिसम्बर 2007

पष्चात ही ईसाई मिषनरियों का छत्तीसगढ़ में प्रवेष एवं उनके द्वारा अछूतों एवं षोषितों का बलात धर्मानंतरण ने सतनाम पंथ को पुर्नस्थापित का मौका दिया। फलस्वरूप ब्राह्मण धर्म तथा ईसाई धर्म के विरूद्ध दो तरफा विरोध ने सतनाम के विभिन्न परंपराओं में नये स्तर से सामाजिक एवं सांस्कृतिक सामाजिक षोषण के विरूद्ध तीक्ष्णता आई।

पंडित सुखराम जाँगड़े ने बताया कि "गुरु बालक दास की मृत्यु के पष्चात सतनामी समाज ने हिंदू धर्म से सीधे तौर पर संघर्ष के साथ–साथ हिंदू धर्म रीति–रिवाजों त्योहारों को सतनाम पंथ में अपनाकर हिंदू धर्म की ही भाँति विभिन्न मिथकों, मूल्यों एवं संकेतों का निर्माण किया। इस प्रसंग का उदाहरण हिंदू धर्म में कृष्ण जन्माष्टमी के समांनातर सतनाम पंथ में बालक दास जयंती के उत्सव में देखने को मिलता है। इस प्रक्रिया में सतनामी "गुरुओं का संबंध दैवीय और अवतारवाद से जोड़ कर हिंदू धर्म की भाँति सतनाम धर्म को प्रचारित किया गया। बालक दास के जन्म की परिस्थितियों को कृष्ण के जन्म की परिस्थितियों के अनुसार ढ़ालकर बालक दास को दैवीय रूप प्रदान किया गया।"

पंथी गीत में इसी प्रसंग को बालक दास एवं सफुरा माता के प्रसंग में सजाया गया है–

दिन के आठे बुध के भादो
रोहिनी नक्षत्र में जनम लेले ललना
यही पारा मथुरा वही पारा गोकुला
बीच में नंदी कुदइली हो ललना
हाथ में हथकड़ी पाँव में बेली
दिया मा चारा दिया मा पानी देव वेला
ये ऐसे दिन व रातें हो ललना[6] ....

[6] सुखराम जांगड़े, निजी साक्षात्कार, कुटेसर (रायपुर) 16 दिसम्बर 2007

स्वतंत्र लोकाचारों एवं लोक व्यवहारों के साथ–साथ उपनिवेषिक एवं जातीय षोषण के खिलाफ पंथी गीतों एवं नृत्यों द्वारा विरोध दर्षाया गया। यद्यपि साहित्यिक एक लेखीय साक्ष्य की अनुपलब्धता के कारण इन सभी परंपराओं को परखने के लिये मौखिक परंपरा का ही आधार बनाया जा सकता है। इन मौखिक परंपरा में सतनामियों को एक उग्र एवं प्रतिक्रियावदी वर्ग के रूप में कहा गया है जिन्होंने 1857 में ब्रिटिष उपनिवेष के खिलाफ हुए विद्रोह में एक अहम् भूमिका निभाई। इस उपनिवेषिक सत्ता के प्रति विद्रोह की छाप न केवल सतनामी समाज के विचारों में बल्कि सांस्कृतिक परंपराओं के द्वारा उन्होंने अपने विद्रोह को दर्ज किया। जे॰ आर॰ सोनी के अनुसार इस पूरे घटना क्रम के दौान सतनामी समाज ने पंथी गीत के माध्यम से जन चेतना का प्रचार–प्रसार किया। इस दौर के "सतनामी स्वतंत्रता संग्रामियों ने ब्रिटिष जेलों में रहते हुए विभिन्न पंथी गीतों द्वारा उपनिवेषिक सरकार के दमन एवं षोषण का विरोध किया।"

1857 ई॰ के भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन से लेकर छत्तीसगढ़ की पृष्ठभूमि में डॉ॰ अम्बेडकर के विचारों के स्थापित होने तक सतनामियों ने कांग्रेस द्वारा संचालित स्वतंत्रता आंदोलन में भागीदारी की तथा अपने स्तर पर पंथी गीतों एवं नृत्यों द्वारा जन–जन में इसका प्रचार–प्रसार किया। मौखिक परंपराओं में इन आख्यानों की एक लम्बी कड़ी मिलती है।

बीसवीं सदी के तीसरे दषक में डा॰ अम्बेडकर ने भारतीय राजनीति में सषक्त दलित नेता के रूप में स्थापित होने का प्रभाव छत्तीसगढ़ के षोषित एवं दलित जातियों पर पड़ा। डा॰ अम्बेडकर के दलित चेतना के प्रति राष्ट्रव्यापी आंदोलन ने छत्तीसगढ़ में सतनामी, सूर्यवंषी, गाढ़ा धसिया आदि दलित जातियों ने यहाँ पर दलित आंदोलन के लिए एक आधार बनाया।

"बीरेन्द्र ढ़ीढ़ी के अनुसार बीसवीं सदी के तीसरे दषक में सतनाम पंथ के मिथकों, इतिहास एवं सांस्कृतिक परंपराओं को पुर्नसृजित का श्रेय नकुल दादा, ढ़ीढ़ी को जाता है। 1935 ई॰ में नकुल दादा डा॰ अम्बेडकर के संपर्क में आए। अपने राजनैतिक गुरु एम॰डी॰एम॰ सिंह के मार्गदर्षन एवं डा॰ अम्बेडकर के प्रभाव से उन्होंने छत्तीसगढ़ में 1938 ई॰ में दलित आंदोलन का सूत्रपात किया। इस पूरे घटनाक्रम में छत्तीसगढ़ में विभिन्न उपजातियों में बिखरे दलितों को जोड़ने एवं उन्हें राजनैतिक रूप से जाग्रत करने के लिए गुरु घासी दास को दलित एकता के संकेत के रूप मे अभिव्यक्त किया गया। उन्हीं के प्रयासों से सर्वप्रथम आम सहमति से माघ पूर्णिमा के स्थान पर 18 दिसंबर 1938 को गुरू घासीदास जन्मोत्सव मनाने का निर्णय लिया। इसी दौरान विभिन्न पत्रों एवं पम्फलेटों के द्वारा समस्त षोषितों एवं दलितों से इस जन्मोत्सव में बड़ी संख्या में षिरकत करने का आह्वान किया गया।

नकुल ढ़ीढ़ी ने छत्तीसगढ़ में दलित वैचारिक क्रांति के बीज बोने के लिए सतनाम पंथ की संस्कृति एवं लोक परंपराओं को विषिष्ट महत्ता दी गई। जिसके प्रभाव स्वरूप पंथी के विषय–वस्तु एवं सौन्दर्यबोध में एक जबर्दस्त बदलाव आया।"[7] दलित मनोविज्ञान को ध्यान में रखकर किया।

1938 ई॰ में सतनामी समाज को पृथक पहचान एवं अस्तित्व देने की समूची प्रक्रिया भारतीय राष्ट्रवाद की परिकल्पना के समीचीन सी प्रतीत होती है। पार्थो चटर्जी के अनुसार 20वीं सदी के प्रारंभ में राष्ट्रवादियों द्वारा परिकल्पित सुनहरे अतीत, इतिहास एवं संस्कृति की परिकल्पना ने जिस प्रकार भारतीय हिंदू परंपराओं को पुनर्संयोजित कर हिन्दुओं की विषिष्ट स्थिति को प्रस्तुत किया। ठीक उसी प्रकार छत्तीसगढ़ में नकुल

[7] बीरेन्द्र ढ़ीढ़ी से निजी साक्षात्कार, रायपुर, 18 दिसम्बर 2007

दादा ढ़ीढ़ी व उनके सहयोगियों ने सतनाम के मिथकों, इतिहास एवं संस्कृति को पुनर्संयोजित कर छत्तीसगढ़ के सामाजिक परिदृष्यों सतनामियों की एक विषिष्ट स्थिति एवं उनकी परंपरा को प्रस्तुत कर उन्हें अन्य समाज से अलग करके उनमें सामाजिक चेतना का प्रचार–प्रसार करने की कवायद की।

नकुल दादा ढ़ीढ़ी के समानांतर तत्कालीन सतनामी गुरु मुक्तावन दास जी भी डा॰ अम्बेडकर द्वारा चलाए जा रहे दलित आंदोलन से प्रकाषित प्रभावित हुए। "उन्होंने 1945 ई॰ में विजयदषमी के दिन डा॰ अम्बेडकर को छत्तीसगढ़ में एक सभा को संबोधित करने का निमंत्रण भी दिया। किंतु तत्कालीन राजनैतिक परिस्थितियों में गुरु मुक्तावन दास जी को झूठी हत्या के प्रकरण में फंसाकर उन्हें 24.04.1945 को आजीवन कारावास की सजा हुई जिसके परिणामस्वरूप डा॰ अम्बेडकर छत्तीसगढ़ नहीं जा सके।"[8] उनके स्थान पर नकुल दादा ने एक लंबे समय तक छत्तीसगढ़ में दलित चेतना का प्रचार–प्रसार किया। उस समय मौखिक परंपरा में यह कहा गया कि–

ऐसी वृक्षा लगाए गुरु बाबा हा
फल–फूल के बोह तैयार होवेगा
पानी री नकुल ढ़ीढ़ी, मिनीमाता हा
कतको कवि देष में हाषियार होवेगा।।[9]

1956 में अम्बेडकर की मृत्यु के बाद के काल से लेकर छत्तीसगढ़ में 1984 में बहुजन समाज पार्टी के उदय तक सतनामियों की उग्र राजनैतिक संघर्ष में कमी आई। सतनामियों का बड़ा धड़ा कांग्रेस तथा अन्य राजनैतिक पार्टियों से जुड़ गया। ऐसे समय में सतनामियों को एक स्वतंत्र प्रतिनिधित्व नहीं मिल पाया। ऐसे समय में सतनामियों ने

[8] जे. आर. सोनी, पंथी गीत और राष्ट्रीय चेतना, पृष्ठ–120
[9] सुखराम जांगड़े, निजी साक्षात्कार, कुटेसर (रायपुर) 16 दिसम्बर 2007

अपनी सतनाम पंथ से जुड़े हुए विभिन्न धार्मिक एवं आध्यात्मिक परंपराओं को पंथी नृत्य द्वारा आगे बढ़ाने के साथ–साथ षिक्षा, षराब बंदी, स्वास्थ्य एवं समृद्ध जीवन के लिए मानव एवं आर्थिक संसाधनों को सुदृढ़ करने की अपील की।

इस पूरे प्रक्रिया में छत्तीसगढ़ के जन–जन ने भूमिका निभाकर पंथी गीतों एवं पंथी नृत्य में सहयोग कर एवं समृद्ध सामाजिक एवं आर्थिक चेतना का प्रचार–प्रसार किया। उन्नीस सौ साठ के दषक में तत्कालिन भारतीय प्रधानमंत्री लाल बहादुर षास्त्री द्वारा उद्घोषित "जय जवान, जय किसान" के नारे ने कृषक सतनामी समाज पर अमिट छाप छोड़ी। उन्होंने कृषि कार्यों पर गर्व महसूस कर तथा देष की सुरक्षा, एकता एवं अखण्डता को बनाये रखने के लिए नौजवानों को फौज में भर्ती होने का आह्वान किया। पंथी गीत में इसे बहुत मार्मिक ढ़ंग से उतारा गया है–

जय हो, जय हो गा किसान,
जय हो, जय हो गा, जवान
तीन रंग झंडा हमर देष के निषान।
केसरी रंग झंडा हमर करे रखवारी हो
सादा रंग झंडा हा सच्चाई के निषान में
हरा रंग झंडा हा आजादी के निषानी हो
तीनों मिलके देष ला बनाइन हें महान
तीन रंग झंडा हमर देष के निषान।[10]

किसान और जवान की महत्ता को पंथी गीत एवं नृत्य के समानांतर इस युग में सतनामियों में आधुनिक षिक्षा के प्रसार–प्रसार के लिए पंथी नृत्य एवं गीतों को आधार बनाया गया।

---

[10] जे. आर. सोनी, पंथी गीत और राष्ट्रीय चेतना, पृष्ठ–35

पढ़े लिखे के अवसर आगे, झन में मड़का ल डारव
पढ़ लिख के षिक्षित वनव,
अऊ घर ल अपन सुधारध
स्कूल पढ़े बर जावो अपन गाँव के ये ओ दीदी
मालूम हो जाहि अक्षर पहिचान के
गीत कविता अऊ कहानी धलो पढ़ाबो
अंक अऊ अक्षर पहिचान के।
गुणा भाग सीख लेबो, जोड़ अऊ घटाना।
सुहधर मऊका मिले हवय, एला झन गवाना।।
एला झन गवाना बहिनी – 2
पढ़े लिखे में भईया बड़ा सम्मान मिलथे
झन छोड़व ए सब ल जान के।।[11]

षिक्षा, देष की अखंडता एवं समसायिक राजनैतिक घटनाओं से प्रभावित होकर इस काल में पंथी गीत एवं पंथी नृत्य ने सतनामियों में राष्ट्रीय एवं सामाजिक चेतना का प्रचार–प्रसार किया। साठ एवं सत्तर के दषक में सतनामी धर्म सुधारकों ने पुनः सामाजिक कुरीतियों पर प्रहार करे गुरु घासीदास की सांस्कृतिक परंपरा को पंथी नृत्य के द्वारा पुनर्सर्जित किया। पंथी गीतों में अत्यधिक लचीला पन होने से इन्होंने जन–जन की वाणी को सहजतापूर्वक आत्मसात् कर लिया। परदेशी राम वर्मा के अनुसार "समाज में समयानुसार नये दोष पैदा होते है। समय की इस ललकार को पंथी कलाकार सुनकर भागता नहीं बल्कि ताल ठोककर खड़ा हो जाता है और अपने दल के साथ मिलकर विसंगतियों पर कमर कसने का सफल प्रयास करता है। इसलिये पंथी पुराने रंग में रंगे

[11] वही पृष्ठ–197

होकर भी चिर–नवीन बनते हैं। नये समाज के द्वन्द्व को स्वीकारने वाली विधायें ही अजर–अमर होती हैं। पंथी विधा ऐसी ही विधा है।"[12] पंथी विधा ने नये षब्दों एवं सोपानों द्वारा विसंगतियों पर नये ढ़ंग से कटाक्ष किया। जिसकी छाप बीसवीं सदी में छुआ–छूत जैसे असामाजिक बुराई की विरूद्ध पंथी गीतों द्वारा में नये ढ़ंग से अभिव्यक्त होती है।

भाई होथे कईसन छूआ, ये रूआ ये आ धूंआ
कोई मुंहु ल बतातिन, पकड़ के तीर न लातिन,
त चिन्ह लेतेव जी
जीव मोर कडवाबे भाई, सुने ल गोठ के।
कोन हा निकालिस येला, कहाँ ले खोज के।।

घोर : कहाँ ले खोज के – 2
पटक : कईसे पता मैं लगावा, पूछे काखर मेर जांवा।
कोई मुहु ल ...
मनखे के छुआ ले का, मनखे छुआ जाथे
अइसे लागथे ओकर, अक्कल हरा जाथे।।
घोर : अक्कल हरा जाथे – 2
कइसे एला पतियावा, कईसे मन ल मैं मड़ावा
कोई मुंहु ल ...
सबो कर थन गूजर भईया, एके तरिया के पानी म
झन मानव छूआ छूत ले, दो दिन के जिनगानी म

[12] परदेशी राम वर्मा, पंथी गीत और राष्ट्रीय चेतना, (सं. जे. आर. सोनी) पृष्ठ, 61–62

पटक : सबो एके संग आवा, भईया सुनता ल मड़ावा

कोई मुंहु ल ... भाई[13] ...

सतनामी समाज का प्रत्येक व्यक्ति अपने भावनाओं के अनुसार पंथी गीत का सृजन कर सकता है आश्चर्य की बात यह है कि सतनामी समाज इन्हें सहर्ष रूप से स्वीकार कर लेता है। इसी दौर में गुरु घासीदास एवं सतनामी तीर्थ स्थानों की महिमा का वर्णन एक नये रूप में किया गया।

घोर : बंदव मैं घासीदास तोला, चरण कमल के दासी अव

सुमख् मैं सतनाम पिता, चरण कमल के दासी अव

चरण कमल के दासी अव बाबा – 2

दौड़ : बंदव मैं घासीदास तोला

पद् : तोर चरण में सफुरा माता तरगे – 2

सफुरा माता तरगे

दौड़ : बंदव मैं घासीदास तोला

पद् : तोर चरण में तरगे बाबा गिरोधपुरी के वासी ह

गिरौदपुरी के वासी ह

दौड़ : बंदव मैं घासीदास तोला

पद : तोर चरण में तरगे बाबा भंडारपुरी के वासी ह

भंडारपुरी के वासी ह

दौड़ : बंदव मैं घासीदास तोला

पद् : तोर चरण में तरगे बाबा तेलासीपुरी के वासी ह

तेलासीपुरी के वासी ह

---

[13] जे. आर. सोनी, पंथी गीत और राष्ट्रीय चेतना, पृष्ठ–196

दौड़ : बंदव मैं घासीदास तोला

पद् : तोर चरण में तरगे बाबा खड़वापुरी के वासी ह

खड़वापुरी के वासी ह – 2

दौड़ : बंदव मैं घासीदास तोला ...[14]

बाबा गुरु घासीदास एवं सतनामी तीर्थों की तरह ही जय स्तम्भ की महिमा एवं उसकी सतनामी समाज में प्रासंगिता उतनी ही महत्वपूर्ण है। जय स्तम्भ न केवल गुरु घासीदास षिक्षाओं का सार है बल्कि सतनामी समाज के सुख, दुख, भावना एवं दर्षन को अभिव्यक्ति करता है। जय स्तम्भ (जैतखाम) गाँव, षहर एवं मोहल्लों में वहाँ पर रहने वाले सतनामी समाज की स्थिति को रेखांकित करता है। जैतखाम से भावनात्मक रूप से जुड़े होने के कारण सतनामी सांस्कृतिक परंपराओं में जैतखाम को सर्वाधिक पवित्र एवं सात्विक माना जाता है। जैतखाम के उपर फहराता हुआ सफेद ध्वज जो स्वच्छता, भातृत्व, अहिंसा एवं सात्विक मानवीय मूल्यों को एवं समाज पर सतनाम पंथ की विजय को इंगित करता है। इसी जैतखाम को केन्द्र बिन्दु बनाकर पंथी गीतों का सृजन होता आया है।

जैतखाम एवं गुरु घासीदास के सम्बंध पर निर्मित आधुनिक पंथी गीत–

तैं तो छोड़े बाबा सादा के झण्डा निषानी

ये सादा के झण्डा निषानी ल, बाबा, सादा के झण्डा निषानी ल – 2

ये गाँव बीच गली, गली बीच चौरा

चौरा म खम्भा गड़ा दिये न

नरियल, ध्वजा ले ऊपर चड़ाके

जै–जैकार बोला दिये न – 2

[14] जय प्रकाश कोसले, निजी साक्षात्कार बरहा जय सतनाम पार्टी मंदिर हसौद रायपुर – 14 दिसम्बर 2007

लहर–लहर झण्डा लहरावे ये दुनिया पहचानी
दौड़ : तै तो छोड़े बाबा सादा के झण्डा निषानी
18 दिसंबर जयंती मनावत हाथ दोनो जोड़ेव
बाबा हाथ दोनो जोड़ेव
रक्षा हमर तैं करबे बाबा नई दुनिया म कोनो
बाबा नई दुनिया म कोनो
हम सबो भाई–भाई हवन कर लेहू मितानी ...
तै तो छोड़े बाबा सदा ...[15]

बीसवीं सदी के सातवें दषक में पंथी नृत्य को राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय ख्याति मिलना प्रारंभ हुआ। "1970 के दषक में प्रसिद्ध नृतक देवादास बंजारे का उद्‌भव हुआ। देवदास बंजारे ने पंथी नृत्य को सतनामियों की चौपाल से उठाकर इसके मंचीय प्रस्तुति के रूप में प्रस्तुत किया। 1970 में उन्होंने नृत्य प्रदर्षन की औपचारिक षुरूआत की। मेलो–मड़ई में वे मंडली के संग गुरु घासीदास की निर्गुण पंक्तियों पर नृत्य करते हुए देखे जा सकते थे। 1980 से इस नृत्य को एक स्वतंत्र पहचान मिली। पंथी नृत्य में पिरामिडों का प्रचलन भी इसी समय हुआ जिसका श्रेय हबीब तनवीर को जाता है।"[16] प्रसिद्ध नाटककार हबीब तनवीर ने अपने नाटक चरण दास चोर में इन्हीं सतनामी समाज की लोक परंपरा एवं उनके नैतिक मूल्यों का प्रयोग अपने नाटक के मध्य में प्रयुक्त की गई पंथी नृत्य की प्रस्तुति में किया। सतनामी परंपराओं में चरण दास चोर का एक लंबा आख्यान मिलता है। गुरु घासीदास से प्रभावित होकर अंततः वह सतनाम पंथ में दीक्षित हो जाता है। इस प्रयुक्त प्रस्तुति में चरण दास चोर की विभिन्न मनोवैज्ञानिक दषाओं को

[15] रूप नारायण बंजारे, निजी साक्षात्कार – उगता सूरज पंथी लोक नृत्य सेवा समिति, चीचा रायपुर (17 दिसम्बर 2007)
[16] मोती लाल भास्कर मड़ई 2005 (सं. काली चरण यादव) पृष्ठ–179

दर्षाते हुए यह नसीहत दी गई है कि चोर, झूठ, फरेब से परलोक बिगड़ जाता हे इसलिये सदाचार अथवा सत् का मार्ग ही सही पथ है।

धोर : ये नरतन पाप के चोरी तैं मत करबे
सत्यनाम सही नाम नइतो पाबे
ये नरतन पाप के चोरी तैं मत करबे...

पद : झूठ न छूटे हो, झूठ के बोलैया से
जुवा नई छूटे हो जुवा के खिलैया से

उड़ान : तोर जी के कइसे मुक्ति लगाबे, ये नरतन...

पद : दारू नई तो छूटे जी दारू के पियैया से
चोरी नई तो छूटे जी चोरी के करैया से... 2

उड़ान : पाछ मन–मन ने पाछताबे। नरतन...

पद : सच नई छूटे जी, सच के बोलैया से.... 2
किसी के नई छूटे जी, जो–जो जस करइया से... 2

उड़ान : अपन ईष्वर से तैं कैसे मुँह छुपाबे हो। ये नरतन... 1[17]

ये क्षण–प्रतिक्षण आकार बदलते हुए पिरामिड आज भी पंथी नृर्तकों की पसंदीदा भंगिमाएँ हैं। हबीब तनवीर एवं देवादास के पंथी नृत्य में इस नई प्रयोगधर्मिता के पहले पंथी नृत्य में पिरामिड नहीं होता था। नृतक प्रायः मंडलाकार आकृति में नाचते थे। जहाँ तक गति का प्रष्न है तो वह अच्छी–खासी हुआ करती थी। पंथी नृत्य में ये पिरामिड सतनाम पंथ के पवित्र प्रतीक जैतखाम की अभिव्यक्ति देते थे।

देवदास बंजारे ने पंथी नृत्य के छत्तीसगढ़ की पृष्ठभूमि से बाहर निकालकर उसे राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय पहचान दिलवाने का प्रयास किया। विष्व के द्रुत गति का नृत्य

[17] जे. आर. सोनी, पंथी गीत और राष्ट्रीय चेतना, पृष्ठ–36

होने के कारण इसे अन्य देषों में प्रसिद्धि मिली। देवदास द्वारा निर्मित "धनोरा पंथी पार्टी" के पंथी नृत्य के विभिन्न आयामों पर प्रयोग किया तथा उसकी स्वतंत्र पहचान बनाने के लिए उसने कलात्मक पहलुओं यथा वेष–भूषा आदि पर अधिक बल दिया। देवदास ने छत्तीसगढ़ के ग्रामीण अंचलों से युवाओं को चुनकर पंथी टोलियों का निर्माण किया। अपने प्रारंभिक चरण में उन्होंने भिलाई के आस–पास गाँवों में निरंतर पंथी नृत्य का आयोजन। दूसरे चरण में उन्होंने सतनामियों के तीर्थ स्थल गिरौधपुरी, चटवापुरी (गुरु अगमन दास का समाधि स्थल), भंडारपुरी इत्यादि स्थलों पर भव्य पंथी प्रस्तुतियाँ दी।

वस्तुतः देवदास बंजारे बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। रायपुर दूरदर्षन एवं आकाषवाणी के 'अ' श्रेणी के कलाकार के रूप में उन्हें सदस्य मनोनीत किया गया। इसके साथ ही नई दिल्ली की "नया थियेटर संस्था" के सहयोगी कलाकार हबीब तनवीर द्वारा निर्देषित "चरणदास चोर" नाटक के नृत्य निर्देषक बने। साउथ सेन्ट्रल जोन नागपुर, इलाहाबाद जोन, कलकत्ता जोन, तंजोर जोन, त्रिपुरा जोन की उन्हें सम्मानित कलाकार की हैसियत प्राप्त हुई। गिरौधपुरी में लगातार हर साल 10 वर्षों तक स्वर्ण पद्म से नवाजे गये। उनकी अद्भुत प्रतिभा से आकर्षित होकर सन् 1975 में भारतीय गणराज्य के तत्कालीन राष्ट्रपति महामहिम फखरूद्दीन अली अहमद ने लोक कलाओं के संरक्षण एवं सृजन के लिये स्वर्ण पदक प्रदान किया। 1994 में मध्य प्रदेष सरकार ने छत्तीसगढ़ की 10 महान विभूतियों के सम्मान समारोह में "धरती पुत्र" की उपाधि से सम्मानित किया। अन्य सम्मानों में उन्हें "सतनामी रत्न" एवं "सृजन श्री" की उपाधियाँ प्राप्त हुई।

देवदास बंजारे ने पंथी कलाकार के रूप में विदेषों में भी प्रस्तुतियाँ दी। "इसकी षुरूआत उन्होंने 1976 में सोवियत संघ में पंथी नृत्य की प्रस्तुति से की जहाँ उन्होंने सोवियत संघ के तत्कालीन राष्ट्रपति गोल्डन के समक्ष एक सराहनीय प्रस्तुति दी। 1982

ई॰ में लंदन, एडिनबर्ग कार्डिक, हेम्बर्ग ग्रेट हालैण्ड, जर्मनी तथा फ्रांस के कई बड़े षहरों के दौरे किये। इस दौरान देवदास की ख्याति पूरे विष्व में फैल गई। इस तरह उन्होंने 64 विदेषी मंचों पर अपनी कला का जादू बिखेर कर पंथी नृत्य को विष्व ख्याति दिलाई।"[18]

देवदास के पद् चिंहों पर चल कर अन्य सतनामी पंथी कलाकारों ने स्वतंत्र पंथी पार्टियों का निर्माण किया। इन पार्टियों का मुख्य ध्येय गुरु घासीदास के निर्गुण षिक्षाओं एवं सतनामी मानवीय चेतनाओं एवं विष्वासों का सतनामी जाति के अलावा संपूर्ण मानव समाज में प्रचार–प्रसार करना था। रायपुर, दुर्ग, भिलाई और बिलासपुर के षहरी एवं ग्रामीण अंचलों में लगभग प्रत्येक गाँव में एक स्वतंत्र पंथी पार्टिया आज भी विद्यमान है। "देवदास बंजारे के समान ही अन्य पंथी कलाकार इस विधा में आये और उन्होंने अपने स्तर पर पंथी गीत एवं नृत्य में सराहनीय योगदान दिया। इन कलाकारों में श्री पुराणिक लाल चेलक श्रीमती उषा बारले, श्रीमती सामे षास्त्री देवी, श्रीमती सूरज बाई खाण्डे, डा॰ बारले गोरेलाल बर्मन, यथवंत सतनामी, ममता चन्द्राकार का नाम प्रमुख है।"[19]

देवदास से प्रेरणा लेकर आज भी छत्तीसगढ़ के ग्रामीण क्षेत्रों युवा स्वेच्छापूर्वक पंथी पार्टियों को निर्माण कर सतनाम पंथ के प्रचार–प्रसार में जुड़े हुए है। ऐसी ही पार्टियों में माता अमरौतिन पंथी पार्टी (मंदिर हसौद), सतनाम पंथी पार्टी, गुरु घासीदास पंथी पार्टी, दिव्य ज्योति पंथी पार्टी, जन जागृति पंथी पार्टी, बरछा जय सतनाम पार्टी (आरंग), उगता सूरज पंथी लोक नृत्य सेवा समिति, चीचा (रायपुर) एवं सफुरा माता पंथी दल प्रमुख है। ये सभी पंथी पार्टियाँ क्षेत्रीय एवं राष्ट्रीय स्तर पर पंथी नृत्य एवं सतनाम का प्रचार–प्रसार कर रही है।

[18] मोती लाल भास्कर मड़ई 2005 (सं. काली चरण यादव) पृष्ठ–179
[19] जे. आर. सोनी, पंथी गीत और राष्ट्रीय चेतना, पृष्ठ–24

1980 ई॰ के दषक से पंथी नृत्य को सामाजिक एवं धार्मिक चेतना के प्रचार–प्रसार के साथ–साथ एक उग्र राजनैतिक चेतना दलितों में ब्राह्मणवादी ढ़ाँचे के षोषण के विरूद्ध सचेत होने एवं दलित अधिकारों के प्रति जागृति लाने के प्रचार–प्रसार हेतु एक माध्यम बनाया। पंथी नृत्य को गुरु घासीदास की सषक्त उग्र राजनैतिक विरोध की पंरपरा के समान ही मान्यवर कांषीराम ने छत्तीसगढ़ में संघर्ष की परंपरा को एक नये रूप में पुनर्स्थापित किया। 6 दिसंबर 1978 ई॰ को कांषीराम ने बामसेफ नाम एक अराजनैतिक संस्था की स्थापना की जिसका प्रमुख उद्देष्य ब्राह्मणवाद के विभिन्न आयामों पर कटाक्ष एक सामाजिक सच्चाई उजागर करना था। षीघ्र ही बामसेफ की षाखायें छत्तीसगढ़ में फैल गई। बामसेफ ने पुनः एकबार दलित चेतना का प्रचार–प्रसार किया फलस्वरूप छत्तीसगढ़ में सतनामी कर्मचारियों एवं छात्रों ने भारी संख्या में इसकी सदस्यता ग्रहण की। वस्तुतः बामसेफ ने ही बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में सतनामियों एवं उनकी परंपराओं को अखिल भारतीय दलित राजनीति से जोड़ा। प्राथमिक तौर पर बामसेफ द्वारा ब्राह्मणवादी ढ़ाँचे के विभिन्न षोषणकारी आयामों को अपनी कटु आलोचना का केन्द्र बनाया। "''जाति तोड़ो'', ''समाज जोड़ो'' जातियों की 'चीनी दीवार नष्ट करो', 'भाईचारे के पुल बनाओ' का आह्वान करने के बाद मान्यवर कांषीराम ने सामाजिक बदलाव के लक्ष्य को निर्धारित कर एक मजबूत बहुजन समाज के प्रत्येक जाति–समूह के स्वाभिमान की नींव पर खड़ा किया। उनका मानना था कि हर जाति को यह पूरी तरह या अच्छी तरह समझना होगा कि उनका समूह इस नीले आकाष के नीचे किसी दूसरे जाति समूह से कमतर नहीं है। ना ही उस जाति समूह को यह मानना होगा कि उसका जाति दूसरे जाति समूह से ऊँचा है। हर जाति को अपने में विष्वास और आत्म सम्मान होगा कि वे किसी से कम नहीं है। इससे ''सब समान हैं'' की भावना और आदर का भाव पैदा होगा। हर जाति का हर सदस्य, हर अवसर से लाभ उठाने का समान

अधिकार रखता है जो समाज की दूसरी जातियाँ उठाती है और वह कोई भी मानवीय आकांक्षा पूरी करने लिए बराबर का अधिकारी है।"[20]

"दलित समाज सेवी जे. के. शास्त्री ने बताया कि मान्यवर कांषीराम के आह्वान से छत्तीसगढ़ में रहने वाली सूर्यवंषी, रामनामी, गाढ़ा, चमार घसिया, देवांगन और सतनामी जैसी दलित जातियों को एक प्लेटफार्म पर लाकर खड़ा कर दिया। 1984 में बामसेफ के समानांतर मान्यवर कांषीराम जी ने डी॰ एस॰ फोर (दलित षोषित समाज संघ) की स्थापना की। ठीक उसी वर्ष डी॰ एस॰ फोर का रूपांतरण बहुजन समाज पार्टी नाम की राजनैतिक संस्था में हो गया। सर्वप्रथम मान्यवर कांषीराम ने अपने राजनैतिक यात्रा (कैरियर) का प्रारंभ छत्तीसगढ़ के चांपा जांजगीर से 1984 में लोकसभा के उम्मीदवार के रूप में चुनाव लड़कर किया। चांपा जांजगीर के आस–पास फैले हुए सतनामी समुदाय को राजनैतिक महत्वाकांक्षा एवं उनके अंदर दलित राजनैतिक प्रतिनिधित्व तैयार करने के लिए मान्यवर कांषीराम ने इस पूरे क्षेत्र में लगातर सघन दौरे किये। मान्यवर कांषीराम जी द्वारा फैलायी गई यह नव दलित राजनैतिक चेतना का प्रभाव सतनामियों की सामाजिक एवं उनकी सांस्कृति परंपराओं पर पड़ा। फलस्वरूप पंथी नृत्य के सौन्दर्यबोध एवं उसकी विषय वस्तु पर जबरदस्त बदलाव आया।"[21]

महेश चतुर्वेदानी ने बताया कि 1984 ई॰ से लेकर 1990 ई॰ के दषक तक मान्यवर कांषीराम ने सतनामी जागृति आंदोलन के नाम पर सतनामी समाज से जुड़े विभिन्न पर्वों एवं त्योहारों पर वृहत स्तर पर सतनामी सम्मेलन करवाये। इन राजनैतिक स्तर के सतनामी सम्मेलनों में पंथी नृत्य को नव दलित राजनैतिक एवं सामाजिक चेतना के प्रचार–प्रसार का माध्यम बनाया गया। ऐसी प्रस्तुतियों में पंथी नृत्य ने पुनः एक उग्र

[20] रमणिका गुप्ता, दलित चेतनाः सोच, पृष्ठ–77

[21] जे. के. शास्त्री निजी साक्षात्कार, बिलासपुर 14 दिसम्बर 2007

सामाजिक एवं राजनैतिक संघर्ष का बिगुल फूंका। ब्राह्मण धर्म के षोषककारी सामाजिक नियम, दलित समाज के षोषण के विभिन्न आयाम, जाति–पाँति का उच्छेदन, समतावादी समाज की स्थापना, दलितों में राजनैतिक अधिकारों का प्रचार–प्रसार, बहुजन समाज पार्टी की प्रासंगिकता एक दलित एवं सतनामी महापुरुषों के त्याग, संघर्ष एवं उनकी उपलब्धियों को इन पंथी नृत्य की प्रस्तुतियों का विषय बनाया गया। इस संपूर्ण राजनैतिक प्रचार–प्रसार के घटनाक्रम में सतनामी समाज के जन–जन ने अपनी राजनैतिक अभिव्यक्ति के लिये राजनैतिक चेतना के प्रचार–प्रसार के लिए पंथी गीतों की रचना की। मनु स्मृति द्वारा समर्थित जाति संरचना एवं उससे जुड़े हुए बहुआयामी षोषण के विमर्ष पर–

मनखे का चिन्हा है आज, सबो उतरेन एके घाट
तैं तो छुआ छुव मा जिन्गी बिता डारे रे मानुख मुरख गंवार
तैं त तो जाँति–पाँति भेद–भाव बनाए दिहिस रे
पापी मनु महाराज
जाँति पेड़ में जरूर, सरई सिरसा अऊँ बंबूर
वो तो जंगल भरके षोभा ल बढ़ाए दिहिस रे
पापी मनु महाराज
तैं तो मनखे–मनखे भेद बनाए दिहिस रे, पापी मनु महाराज
जाति पक्षी में जरूर सोलही तोता और मंजूर
वो तो एकि डार में खोंधरा बनाए दिहिस रे
पापी मनु महाराज
तैं तो रंग–रंग के बरन बना दिहिस रे पापी मनु महाराज
तैं तो भाई–भाई मा झगरा करा दिहिस रे, पापी मनु महाराज

जात अनाज का जरूर, तिंवरा, धान और मसूर

तैं तो घर–घर मा कुटका करा दिहिस रे, पापी मनु महाराज

जात पषु मा जरूर बइला भइसां और लंगूर

वो तो दुनिया का जरूर उठा दिहिस रे...

जात मनखे में जरूर, एक नारी दूजे पुरूष

वो तो आपसी का सृष्टि बसा दिहिस रे

पापी मनु महाराज

तैं तो रंग रूप मा दुनिया भुलियार दिहिस रे...[22]

मान्यवर कांषीराम के जन जागृति अभियान एवं दलित एवं षोषित जातियों के प्रति उनके समर्पण एवं त्याग को भी पंथी गीतों ने विषय वस्तु बनाया तथा दलित समाज को उनसे प्रेरित होने की प्रेरणा दी।

लगन कठिन मेरे भाई मान्यवर कांषी जी के

लगन कठिन मेरे भाई।

संझा विहन्या अऊ मंझनिया सोये दलित को जगाई

कांषी जी के लगन कठिन मेरे भाई

पद् (1) सुव उठ के बड़े विहन्या साइकिल में पैर जमाई।

गाँव गली मा पड़े दलित म हक की अलख जगाई।

चढ़ान – परे डरे बर हवय बी॰एस॰पी॰

एकरे संग प्रीत लगाई

कांषी जी के लगन कठिन मेरे भाई

पद् (2) आअव–आअव मोरे दलित साथी लइका सियान महतारी

[22] महेश चर्तुवेदानी, निजी साक्षात्कार से प्राप्त, अभनपुर (रायपुर) 14 अप्रैल 2008

तोर बिन सुन्ना, जीतव जवान तुम बी॰एस॰पी॰ संग ये लड़ान

अपन अधिकार बर टूट पड़व तुम दिल्ली भी घबराई

कांषी जी के लगन कठिन मेरे भाई

पद् : पढ़े लिखे बन बइठे हव अनपढ़ झन करव जग हंसाई

तुंहरे मा षक्ति पलटे के धारा सबे मिल जोर लगाई

चढ़ान : लावव क्रांति पहिली नक्षत्र के गगन संग धरती जगमगाई।।

मान्यवर कांषी जी के लगन कठिन मेरे भाई।[23]

इस दषक में चुनाव के दौरान बी॰एस॰पी॰ द्वारा दलित उत्थान के बीड़ा उठाने की महत्तता एवं प्रासंगिकता को भी पंथी प्रस्तुतियों द्वारा जन–जन में फैलाया गया।

बी॰एस॰पी॰ का हाथी[1] आने वाला है

चलव–चलव जी मुसाफिर बाँध लेवव गठरी

धर लेवव पोटली[2] गाड़ी आने वाला है

गाड़ी आने वाला है गाड़ी आने वाला है

पद् : पहली पोटली बाँध चढ़े गुरु बालकदास

क्षत्रीय संग पंजा लड़ाई

आन सतनामी की न जाने पावे

हँस के सतलोक जाई

पद् : दूसर पोटली बांध चढ़े दादा ढ़ीढ़ी

जैत खंभ मा झंडा फहराई

बगरे सतनामी ल करे ईकट्ठा

सुनता के सुर बगराई

[23] महेश चर्तुवेदानी, निजी साक्षात्कार से प्राप्त, अभनपुर (रायपुर) 14 अप्रैल 2008

तीसरी पोटली लिए चढ़े मिनी माता
संभलो दलित जन गोहराई
राज–राज म यष फैलाके
सत के ज्योत जलाई
आरी–पारी अब की बारी हाथी ने दौड़ लगाई
करो सवारी तुम बहुजन भाई, सर्वगुण इसकी न्यारी
अब को सोये तो कभु न जगिहव
कहे कांषीराम विज्ञानी...[24]

मान्यवर कांषीराम एवं बी॰एस॰पी॰ द्वारा सतनामी समाज में प्रचारित–प्रसारित दलित राजनैतिक चेतना फल 1999 के राज्य के विधानसभा क्षेत्रों में देखने को मिला। छत्तीसगढ़ के सारंगगढ़ मालखरौदा, पामगढ़, बलौदा बाजार एवं महासमुंद के सतनामी बाहुल्य क्षेत्रों में बी॰ एस॰ पी॰ को अपार सफलता मिली। उनके प्रतिनिधि राज्य विधानसभा में जाकर सतनामियों को एक स्वतंत्र प्रतिनिधित्व प्रदान किया। राजनैतिक चेतना के अलावा सामाजिक चेतना के पहलू पर कांषीराम की प्रेरणाओं व सतनामी समाज को प्रभावित किया है। छत्तीसगढ़ में उपजातियों में बंटे विभिन्न दलित समुदायों को इकट्ठा कर उन्हें राज्य की राजनीति में एक निर्णायक षक्ति के रूप में खड़ा कर दिया। फलस्वरूप वर्तमान समय में भी छत्तीसगढ़ में रहने वाला दलित समुदाय आज भी अपने अधिकारों को लेकर संघर्षषील है।

बी॰एस॰पी॰ के तर्ज पर अन्य राजनैतिक पार्टियों ने सतनामी सम्मेलनों अथवा मेलों का आयोजन राजनैतिक उद्देष्यों की पूर्ति हेतु प्रारंभ किया। प्रायः गुरु घासीदास का जन्मोत्सव, गुरु बालकदास जन्मोत्सव एवं राजनैतिक अवसरों पर ऐसे सम्मेलनों को देखा

[24] महेश चर्तुवेदानी, निजी साक्षात्कार से प्राप्त, अभनपुर (रायपुर) 14 अप्रैल 2008

जा सकता है। ऐसे सम्मेलनों का मुख्य आर्कषण पंथी नृत्य प्रस्तुति होती है। प्रायः बी॰एस॰पी॰ के प्रश्रय में होने वाले पंथी प्रस्तुतियों की अपेक्षा भाजपा एवं कांग्रेसी पार्टी समर्थित पंथी प्रस्तुतियों में सामाजिक संघर्ष की चर्चा कम होकर धार्मिक एवं आध्यात्मिक प्रस्तुतियाँ अधिक होती है। प्रायः राज्य समर्थित सतनामी सम्मेलनों में पंथी नृत्य की प्रस्तुतियों द्वारा राज्य की नीतियाँ एवं उपलब्धियाँ बताकर सतनामी समाज को आर्कषित करने की कवायद की जाती है।

ऐसी ही एक प्रस्तुति 19 दिसम्बर 2007 को गुरु घासीदास जन्मोत्सव पर रायपुर के पेंषनवाड़ा दलित छात्रावास के प्रांगण में राज्य सरकार द्वारा समर्थित सतनामी सम्मेलन में हुई। सम्मेलन के पूरे घटनाक्रम में भाजपा द्वारा षासित राज्य में इसकी सरकार द्वारा चलाये जा रहे विभिन्न दलित समाज के कल्याण से जुड़े अभियानों एंव नीतियों की चर्चा की गई। छत्तीसगढ़ के वर्तमान मुख्यमंत्री डा॰ रमन सिंह ने इस सम्मेलन को संबोधित किया तथा साथ ही अगले चुनाव में सतनामियों से भाजपा को समर्थन करने की गुहार की। विभिन्न भाजपाई राजनेताओं के संबोधन के पष्चात उनके मंच के सम्मुख ही पंथी टोलियों द्वारा पंथी नृत्य की प्रस्तुतियाँ दी गई। इस सम्मेलन में भाग लेने आई पंथी टोलियों को रायपुर के आस–पास के ग्रामीण क्षेत्रों से आमंत्रित किया गया था और उन्हें इसके लिए सरकार द्वारा मेहनताने के रूप में रुपयों का भुगतान भी किया गया था।

भाजपा द्वारा समर्थित सतनामी सम्मेलनों के समानांतर ही कांग्रेस पार्टी ने समस्त छत्तीसगढ़ के सतनामी बाहुल्य क्षेत्र में सतनामी सम्मेलनों का आयोजन करवाया गया। 20 दिसंबर 2007 में रायपुर षहर के कालीबाड़ी संस्थान में श्री अजीत जोगी के नेतृत्व में गुरु घासीदास के अवसर पर सतनामी सम्मेलन का आयोजन किया गया। कांग्रेस पार्टी के षीर्ष नेताओं के संबोधनों के पष्चात गुरु घासीदास की षिक्षाओं एवं उनके

सामाजिक योगदानों की चर्चा की गई। इन संबोधनों में कांग्रेस पार्टी की उपलब्धियों एवं उसके सामाजिक ध्येय को चर्चा का केन्द्र बनाया गया। तत्पष्चात पंथी नृत्य की प्रस्तुतियाँ दी गई।

भारतीय जनता पार्टी और कांग्रेस द्वारा समर्थित ऐसे सतनामी सम्मेलनों में होने वाली पंथी प्रस्तुतियों में जातीय षोषणों के विभिन्न आयामों एवं ब्राह्मणवाद के खिलाफ सीधी कटाक्ष न कर ब्राह्मणवादी परंपराओं से समझौता करती हुई प्रतीत होती है। ऐसी प्रस्तुतियों में पंथी कलाकार अपनी धार्मिक, आध्यात्मिक एवं सामाजिक भावनाओं से ओत–प्रोत होकर पंथी नृत्य करते है इन सबके बावजूद प्रस्तुति स्थलो (space) एवं दर्षकों के बदलाव से उनकी यह प्रस्तुति सामाजिक स्तर पर समीचीन नहीं प्रतीत होती है। यद्यपि कलाकार अपने पहले की स्थिति में नृत्य करता है किंतु वहाँ पर बैठे अन्य समुदायों के लोग इसे धार्मिक संवेदनाओं की अभिव्यक्ति न मानकर एक मनोरंजन की वस्तु मानते है। वस्तुतः ऐसी स्थिति में पंथी नृत्य केवल एक मनोरंजन की वस्तु बनकर रह जाता है जिससे दलित विष्वासों, मान्यताओं एवं उनके पीछे छुपी सामाजिक विद्रोह की भावना लुप्त हो जाती है।

महेश चतुर्वेदानी ने बताया कि "सतनामी समाज एवं उससे जुड़ी हुई विभिन्न धार्मिक, आध्यात्मिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक परंपराओं में एकायक आये हुए परिवर्तनों का श्रेय वर्तमान के सतनामी पंथ के गुरुओं के अकुषल नेतृत्व को भी जाता है। गुरु मुक्तावन दास एवं उनकी उत्तरवर्ती मिनी माता की मृत्यु के पष्चात सतनामी समाज को गुरुओं की तरफ से एक कुषल नेतृत्व नहीं मिल पाया। बाद के गुरुओं ने अपनी स्वतंत्र राजनैतिक स्थिति नहीं रखी। अधिकतर गुरु अपने आप को धार्मिक एवं रीति–रिवाज के कार्यों में उलझे रहे तथा कुछ गुरु अपनी राजनैतिक स्वार्थों की मूर्ति के लिए दल–बदल करते रहे जिसके परिणाम स्वरूप बी॰एस॰पी॰ के समानांतर ही गुरुओं की तरफ से एक

प्रबुध राजनैतिक प्रतिनिधित्व नहीं मिल पाया। वस्तुतः स्वतंत्रता प्राप्ति के पष्चात के दर्षकों में सतनामी गुरु अपने समाज के विभिन्न आयामों को एकात्मक रूप में लाने में असफल हुए। बाहरी प्रभावों एवं संस्कृतिकरण की प्रक्रिया ने आम सतनामी समाज को काफी हद तक ब्राह्मणवादी मान्यताओं एवं विष्वासों एवं रीति–रिवाजों के समीप लाकर खड़ा कर दिया जिससे उनके कुछ पहलुओं पर स्वतंत्र पहचान को धक्का लगा है।"[25]

पंडित सुखराम पांड़े ने बताया कि "बाहर से आये इन परिवर्तनों ने सतनामी मौखिक एवं सांस्कृतिक परंपराओं को प्रभावित किया है। जहाँ एक ओर इन पचास वर्षों में बदलते सामाजिक परिवेष के आधार पर सतनामियों को दलित पहचान से निकालकर उन्हें एक उच्च वर्गीय पहचान दी जा रही है वहीं दूसरी ओर पंथी गीत व नृत्य की प्रस्तुतियों में राम और कृष्ण की लीलाओं को केन्द्र बिंदु बनाया जा रहा है।"[26]

पंथी नृत्य का व्यवसायीकरण

आज के बदलते हुए परिदृष्य एवं कला के धन अर्जित करने की अखिल भारतीय परिस्थितियों के फलस्वरूप पंथी नृत्य का सतनामी समुदाय ने व्यवसायीकरण करना प्रारंभ कर दिया है। पंथी नृत्य में व्यवसायिकरण की प्रक्रिया संभवतः पिछले 15–20 वर्षों से ही प्रारंभ हुई है। अस्सी के दषक में देवदास एवं अन्य सतनामी कलाकारों को अंतरर्देषीय और अंतर्राष्ट्रीय ख्याति के साथ–साथ धन मिलने की वजह ने अन्य पंथी कलाकारों को पंथी नृत्य के व्यवसायिकरण की तरफ आकर्षित किया।

दूसरे पहलू में सतनामी समुदाय की नई पीढ़ी के युवा का सतनामी परंपराओं में कम रूचि रखना, बहुसंख्या में सतनामियों का मजदूरी एवं रोजगार की खोज छत्तीसगढ़ से प्रवासित होने के फलस्वरूप पंथी कलाकारों की कमी हुई है। जिसके कारण

[25] महेश चर्तुवेदानी, निजी साक्षात्कार से प्राप्त, अभनपुर (रायपुर) 14 अप्रैल 2008
[26] सुखराम जांगड़े, निजी साक्षात्कार, कुटेसर (रायपुर) 16 दिसम्बर 2007

सामाजिक रीति–रिवाज के निर्वाहन के लिए पंथी कलाकारों की मांग बढ़ी। पंथी कलाकारों की समाज में कम संख्या होने के कारण और उनकी सामाजिक मांग अधिक होने से इन्होंने मोल–तोल की प्रक्रिया प्रारंभ कर दिया है। जिसके फलस्वरूप पंथी का पूर्ण रूप से व्यवसायीकरण होने लगा।

सतनामी समाज के वैवाहिक अवसरों पर पंथी नृत्य की प्रस्तुतियाँ में इसका मूल स्वरूप में विकृति देखने को मिलती है। भूमंडलीकरण एवं आधुनिक तकनीक के प्रभाव ने पंथी नृत्यों के वाद्यों एवं संगीतिक संरचना में बदलाव किया है। वर्तमान समय में वैवाहिक अवसरों पर पंथी नृत्य की संरचना Orchestra के नमूने पर की गई है। मांदर, झांझ के स्थान पर ड्रम एवं केसियों का प्रयोग बढ़ गया। इन प्रस्तुतियों में प्रयुक्त होने वाली विषय वस्तु धार्मिक पृष्ठभूमि से हटकर भौतिक एवं रोमांटिक होने लगी है।

पंथी में स्त्रीयों की भागीदारी

अपने प्रारंभ से पंथी नृत्य अन्य भक्ति संतों की अपेक्षा एक पुरुष प्रधान नृत्य था। गुरु घासीदास ने सदैव स्त्री और पुरुष पर समानता पर बल दिया। जिसके फलस्वरूप सतनामी समाज में स्त्रीयों पुरुषों के कंधे से कंधा मिलाकर सदैव आगे आई। यद्यपि पंथी नृत्य में इनकी भागीदारी गौण रही है। सपन भारती ने बताया "1980 के दषक से महिलाओं ने पंथी नृत्य में हिस्सेदारी लेना प्रारंभ कर दिया है। महिलाओं के पंथी नृत्य की प्रस्तुतियाँ प्रायः सार्वजनिक न होकर सिर्फ महिलाओं के व्यक्तिगत स्थलों में होती है। गायक वादक आदि इसमें सभी महिलाएँ ही होती हैं। ऐसी प्रस्तुतियों का मंचन ग्रामीण स्तर से लेकर षहरी स्तर तक देखा जा सकता है। कुछ हद तक ऐसी प्रस्तुतियों ने महिलाओं को भी अपनी भावनाओं एवं संवेदनाओं को अभिव्यक्ति करने का अवसर दिया है।"[27]

[27] सपन भारती, निजी साक्षात्कार, रायपुर 12 अप्रैल 2008

पंथी नृत्य के लोकप्रियता से छत्तीसगढ़ी सिनेमा ने पंथी का प्रयोग क्षेत्रीय फिल्मों किया है। छत्तीसगढ़ी फिल्म ''भेज देबे संदेष'' में पंथी नृत्य को पर्दे पर दिखाया गया है। व्यवसायीकरण की प्रक्रिया में पंथी नृत्य को CDs और DVDs के रूप में Animation के साथ बाजार में बेचा जा रहा है। Animation (सम्मिश्रण) के फलस्वरूप पंथी कलात्मक रूप में विकृति आई है जिससे पंथी के सौन्दर्यबोध एवं साथ–साथ आध्यात्मिक एवं धार्मिक पक्षों का क्षरण होने लगा। बाजार में बिकने वाली ये सामग्रियों यद्यपि सतनामियों को उनके धार्मिक भावनाओं की पूर्ति करती है किंतु साथ ही पंथी नृत्य के दूसरे आयामों को गौण कर उसकी आत्मा को नष्ट कर रही है।

उपसंहार

भारतीय उच्च वर्गीय एवं ब्राह्मणवादी सामाजिक व्यवस्था एवं उससे निर्गत विभिन्न धार्मिक, दार्षनिक, रीति–रिवाज एवं विष्वासों के प्रति निम्न जातिय षोषित एवं अस्पृष्य समाज के संघर्ष का लंबा इतिहास रहा है। भारत का निम्न जातिय अस्पृष्य समाज मूलतः यहाँ का मूल निवासी है। भारत की भौगोलिक एवं सांस्कृतिक विषमताओं के बावजूद इनकी भारतीय समाज में सामाजिक स्थिति लगभग एक सी है। सदियों से षोषण, भेदभाव एवं विपन्नता की मार झेल रहे इस समाज ने इतिहास के विभिन्न कालखंडों में गुलामी एवं षोषण को उतार फेंककर इन बंधनों से मुक्त होने के लिये संघर्ष किया। इस पूरी प्रक्रिया में वे अपनी स्वतंत्र सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक अभिव्यक्तिया देने में सफल भी हुए।

मध्य काल में अखिल भारतीय स्तर पर प्रचारित–प्रसारित हुए निर्गुण भक्ति आंदोलन ने अपृष्यों एवं अछूतों के मनौवैज्ञानिक परिस्थितियों एवं मानसिक आचार–विचार पर एक अद्‌भुद प्रभाव डाला। 11वीं सदी से लेकर पूर्व आधुनिक काल तक का निम्न जातिय समाज इसने इससे भावनात्मक एवं संवेदनात्मक रूप से जुड़ा रहा। मूलतः इस आंदोलन ने निम्न जातिय समाज की वैचारिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों के अंतर्गत रहते हुए उनके मूल्यो एवं विष्वासों का परिष्करण किया। धर्म, दर्षन, रीति–रिवाज, विष्वास एवं परंपराओं के स्तर पर भक्ति आंदोलन से प्रभावित होकर इन जातियों ने एक स्वतंत्र एवं अस्मिता का निर्माण किया। स्वानुभव, प्रमाण एवं साक्षात्कार से प्राप्त निर्गुण अथवा निराकार ईष्वर की परिकल्पना निम्न जातियों की सबसे बड़ी उपलब्धि थीं। सामाजिक ऊँच–नीच, ढोग, आडंबर, भेदभाव पर सीधा कटाक्ष कर एक समतावादी एवं मानव मूल्यों पर आधारित समाज के रचना का अधिक महत्व दिया।

निम्न जातियों की धार्मिक, वैचारिक सोच का सीधा प्रभाव इनके द्वारा सृजति कलाओं पर भी पड़ा। इन कलाओं के माध्यम से निम्न जातीय एवं अस्पृष्य समाज ने अपने संतों एवं महापुरुषों की षिक्षाओं को जन–जन तक पहुँचाने का माध्यम बनाया। इन कलाओं ने न केवल अपने आश्रित समाज को एक सामाजिक, धार्मिक एवं आध्यात्मिक अभिव्यक्ति दी, वरन् षोषणकारी सामाजिक ढ़ाँचे पर निरंतर प्रहार किया। इन कलाओं ने अपनी स्वतंत्र पहचान के लिए ब्राहम्णवादी सांस्कृतिक परंपराओं के सामानांतर स्वच्छंद कलात्मक, सरचनात्मक एवं सौंदर्यबोधक सोपानों का निर्माण किया ताकि ये ब्राह्मणवादी सांस्कृतिक एवं सौर्न्यबोधक परंपराओं से स्वयं को विलग कर सकें।

मूलतः जातियों कें द्वारा सृजित कलाओं ने न केवल विषय वस्तु के स्तर पर बल्कि अपनी संरचना एवं उससे जुड़े समय एवं स्थान को ब्राहमणवादी दायरे से निकालकर सीधे तौर पर अपना सांस्कृति विद्रोह दर्ज किया। आज भी इन निम्न जातीय पंथों की प्रस्तुतियों को मंदिरों या उससे संवाद विशेष स्थानों एवं समय की अपेक्षा खुलें प्रांग्रणों, सड़कों, घरों एवं सार्वजनिक स्थानों पर सहज वेशभूषा एवं वाद्ययंत्रों के साथ देखा जा सकता है। इन सभी कलाओं का वर्तमान रूप आज की देन नहीं, बल्कि एक लंबे काल खंड की जन–जन द्वारा निर्मित मौखिक परंपराओं का योग है, जो आज भी शोषितों के आचार–विचार, रीति–रिवाज, मूल्य एवं अस्मिता को प्रभावित कर रही है।

मध्य काल में पनपे निर्गुण भक्ति आंदोलन से प्रभावित हो अखिल भारतीय स्तर पर अछूतों एवं अस्पृश्यों की सांस्कृतिक अभिव्यक्तयॉ थोड़े बहुत परिवर्तनों के साथ अमूमन एक दूसरे से साम्य रखती हैं।

एक वृहत दृष्टिकोण से देखें तो उत्तर भारतीय कबीर एवं रैदास की सांस्कृतिक परंपरा उत्तर–दक्षिण में सिद्व एवं उड़ीसा के भीमा बोई की सांस्कृतिक से लगभग मेल खती है। इन सबके साथ अनगिनत संस्कृतियाँ है, जो विभिन्न भौगोलिक एवं भाषाई स्तर

पर आज भी क्रियाशील हैं। इन निम्न जातीय संस्कृतियों के साथ विडंबना यह है कि इनको अखिल भारतीय सतर पर पहचान नहीं मिल सकी है। साथ ही इनके ऊपर शोध सामग्री की कमी है।

निर्गुण भक्तिआंदोलन से प्रभावित निम्न जातीय लोक कलाओं के संदर्भ में छत्तीसगढ़ का सतनामी समुदाय का पंथी नृत्य एक प्रमुख उदाहरण है जो वर्तमान समय में भी अपने आश्रित समाज को समसामायिक सामाजिक व्यवस्था में स्वतंत्र पहचान दिलवाने के साथ–साथ उनके सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक सरोकारों की पूर्ति करता है।

पंथी नृत्य का प्रयोग 18वीं में छत्तीसगढ़ में उत्पन्न हुए गुरू घासी दास एवं उनकी शिक्षाओं को मूर्त रूप प्रदान करने में किया। गुरू घासी दास ने वस्तुतः विपन्नता, सामाजिक शोषण एवं भेदभाव की मार झेल रहे दलित एवं शोषित समाज को अपने विचारों से मुक्ति दिलवायी। इन सभी दलित जातियों को "एकेश्वरवाद" से जोड़ना उनकी सबसे बड़ी उपलब्धि थी। गुरू घासी दास के द्वारा स्थापित संकेतों एवं रीति–रिवाजों से आज भी सतनामी समाज भावनाओं एवं संवेदानाओं से जुड़ा हुआ है।

पंथी नृत्य की कलात्मक शैली एवं विषय वस्तु सदैव बदलते हुए अपने समसामयिक, राजनैतिक अवस्थाओं से प्रभावित होती रही है। पंथी नृत्य ने अपने ढ़ाई सौ वर्ष के ऐतिहासिक वृत्त में विभिन्न कलात्मक सौन्दर्य बोधत्मक सोपानों का निर्माण कर अपने समाज का प्रतिनिधित्व किया। ब्राहमणवादी सांस्कृतिक परंपराओं एवं उनके परिवेश के समानांतर इसने अपने मंचन, मिथकों, रीति–रिवाजों एवं सौन्दर्यबोध का निर्माण भी किया।

पंथी नृत्य मुख्यतः पुरुष प्रधान नृत्य शैली है, जिसका मंचन सतनामी जनसंख्या से जुड़े हुए छत्तीसगढ़ के विभिन्न क्षेत्रों में किया जाता है। इन प्रस्तुतियों का आयोजन सामान्यतः धार्मिक, सामाजिक, मांगलिक एवं सांस्कृतिक अवसरों पर देखने को मिलता है।

इन नृत्य प्रस्तुतियों की विषय वस्तु सतनाम पंथ, गुरू घासी दास के जीवन वृत्त, उपलब्धियाँ, शिक्षाओं एवं सामाजिक कुरीतियों के खंडन के इर्द–गिर्द घूमती हैं।

आज के बदलते हुए दौर में दलित आंदोलन, सतनामी समाज की राजनैतिक महत्वाकांक्षा, वैश्वीकरण, वाणिज्यीकरण एवं समसामयिक राजनैतिक घटनाओं ने पंथी नृत्य को अत्यधिक प्रभावित किया है। वस्तुतः 20वीं सदी के अस्सी एवं नब्बे के दशक में बहुजन समाज पार्टी सरीखी राजनैतिक पार्टी द्वारा छत्तीसगढ़ में दलित राजनैतिक चेतना के प्रचार–प्रसार में पंथी नृत्य को माध्यम बनाया गया। इसी के परिणाम स्वरूप आज अन्य राजनैतिक पार्टिया सतनामी समाज को आकर्षित करने के लिए पंथी नृत्य के प्रयोग धर्मी गुण को अपनाकर अपने विचारों, एजेंडो, उपब्धियों एवं भविष्य की रणनीति का प्रचार–प्रसार सतनामियों के बीच कर रही हैं। राजनैतिक परिप्रेक्ष्यों के समानांतर वैश्वीकरण एवं वाणिज्यीकरण की प्रक्रिया ने पंथी नृत्य के विभिन्न पक्षों पर प्रभाव डाला है जिनके फलस्वरूप सतनामियों की स्वस्थ एवं मजबूत मौखिक, सांस्कृतिक परंपराओं में फेर–बदल देखने को मिलता है, फिर भी ये विशिष्ट गुणों के कारण आज भी सतनामी समाज भावनाओं एवं संवेदनाओं के स्तर पर जुड़ी हुई है।

आज के दौर में इस विद्या की प्रासंगिकता एवं इससे जुड़े हुए विभिन्न सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक पक्षों को विश्लेषित कर एवं पुनरावलोकन कर भारतीय सांस्कृतिक परंपराओं के संदर्भ में इन्हें विश्लेषित करने की आवश्यकता हैं, जिससे दलितों की सांस्कृतिक परंपराओं को भी एक स्वतंत्र अभिव्यक्ति एवं पहचान मिल सके, क्योंकि ये कलाएँ न केवल अपने आप में विलेक्षण कलात्मक एवं सौन्दर्यबोधक तत्व को आत्मसात किए हुए है बल्कि ये दलितों के संघर्ष एवं उनकी ऐतिहासिकता को अभिव्यक्त करती हैं।

पुस्तक अनुक्रमणिका

1. ठाकुर, हरी, 1976, छत्तीसगढ़ के रतन, सुधीर प्रकाषन, रायपुर (छत्तीसगढ़)
2. Thapar, Romila, 2000, Cutrual Pasts - Essays on Early Indian History, Oxford University Press, New Delhi
3. Dube, Saurabh, 1998, Untouchable Pasts, Religion, Identity and Power Among Central Indian Community, 1780-1950, State University New York Press, New York.
4. मोहम्मद, षरीफ, 1999, मध्य प्रदेष का लोक संगीत, मध्य प्रदेष हिन्दी ग्रंथ एकेडमी, भोपाल
5. सोनी, जे॰आर॰ (सम्पादक) 2005, पंथी गीत एवं राष्ट्रीय चेतना गुरु घासीदास साहित्य एवं संस्कृति एकेडमी, रायपुर
6. सोनी, जे॰आर॰, 2005, गुरु घासीदास की अमर कथायों, श्री प्रकाषन, दुर्ग (छत्तीसगढ़)
7. अग्रवाल, पुरुषोत्तम, कबीर साखी और सबद, 2007, एन.बी.टी., नई दिल्ली
8. षर्मा राम किषोर, कबीर ग्रंथावली (सटीक), 2003, लोकभारती प्रकाषन, इलाहाबाद
9. विष्नाई, किषना राम, 1996, दादू दयाल, सिद्धांत और कविता, निर्मल प्रकाषन, दिल्ली– 94
10. उपाध्याय, भगवत षरण, 1980, भारतीय कला की भूमिका, पीपुल्स पब्लिकेषन हाउस, नई दिल्ली
11. अंबलगे, काषीनाथ, 2006, बसवेष्वर काव्य षक्ति और सामाजिक षक्ति, लोकभारती प्रकाषन, इलाहाबाद

12. ढ़िन्ढे, धनाराम (संपादक) सत्य–दर्षन : सतनामी इतिहास एवं गुरु घासीदास जीवन दर्षन, 1993, सत्य दर्षन संस्थान, भिलाई (दुर्ग)

13. दुबे ष्यामाचरण, भारतीय समाज, 2001, एन.बी.टी., नई दिल्ली, (अनुवादक– वंदना मिश्र)

14. खुन्टे टी॰ आर॰, सतनाम दर्षन, 2003, स्वागत सतनाम कल्याण एवं गुरु घासीदास चेतना संस्थान, नोएडा (उ॰प्र॰)

15. गुप्ता रमणिका (संपादक) 1998, दलित –चेतना : सोच, नवलेखन प्रकाषन, हजारीबाग

16. पालीवाल कृष्ण दत्त, 2007, डा॰ अम्बेडकर समाज व्यवस्था और दलित साहित्य, किताबघर, नई दिल्ली

17. Briggs, G.W., The Chamars, Low Price Publication, 1990, New Delhi

18. डडसेना, पदमा, 1988, छत्तीसगढ़ के सामाजिक जीवन पर गुरु घासीदास का प्रभाव, रविषंकर विष्वविद्यालय, इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, रायपुर

19. जागड़े, भूषण लाल, सत्य दर्षन और गुरु घासीदास लक्ष्मी आफसेट प्रिन्टर्स, रायपुर

20. शर्मा, रामदास, 1973, छत्तीसगढ़ में साहित्यक चेतना का विकास और उसके विविध आयाम, रवि. वि. विद्यालय, रायपुर (छत्तीसगढ़)

21. कोसरिया, राम प्रसाद, 1998, सतनाम के विरवा, छत्तीसगढ़ साहित्य समिति, रायपुर (छत्तीसगढ़)

22. सोनी, जे. आर., 2006, राष्ट्रीय दलित चेतना में गुरू घासीदास का योगदान, गुरू घासी दास साहित्य एवं संस्कृति एकादमी, रायपुर (छत्तीसगढ़)

23. शास्त्री, जगदीश लाल, (सं.), 1983 श्री मदभागवत पुराणम् मोती लाल बनारसी दास, नई दिल्ली

24. द्विवेद्वी, रेवा प्रसाद, (सं.) 2006 शास्त्र भारतीय उच्च शिक्षा अध्यन केन्द्र, शिमला

25. Parmar, Shyam, 1972, Folk Lores of Madhya Pradesh, NBT, New Delhi

26. Shukla, H.L., 1995, Rediscovered Chattishgarh Vedantic Approaches to Folk Arts, Aryan Book International, New Delhi

27. Marnlasiddaihah, H. M., (ed.)1998, Dimensions of Bhakti Movement in India, Akhila Bharatha Sharana Salnitya Parishat, Mysore

28. वर्मा, ब्रजलाल, (सं.) 1963, रज्जब वाणी, उपमा प्रकाशन प्रा. लि., कानपुर

29. सिंह, पुष्पपाल, 1985, कबीर ग्रन्थावली, अशोक प्रकाशन नई दिल्ली

पत्र पत्रिकायें और समाचार पत्र

1. हरी भूमि (17, 18, 19, 20 दिसम्बर 2007) सं. हिमांशु गौतम, रायपुर संस्करण

2. दैनिक भास्कर (17, 18, 19, 20 दिसम्बर 2007) सं. दिवाकर मुक्ति बोध, रायपुर संस्करण

3. मड़ई लोक क रेखांकन का विनम्र प्रयास, सं. 2005 (सं. काली चरण यादव), रावत नाच महोत्सव समिति, विलासपुर